क्षमावाणी धर्म या धर्मसंकट

"त्यागना क्रोधादि का ही नाम है उत्तमक्षमा
धर्म की आराधना का परिणाम है उत्तम क्षमा
धार मन में बैर अरु क्रोधादि कर जग में भ्रमा
निराकुल हुआ मैं आज धार-उर उत्तम क्षमा

उपकार मेरा आत्म पर जगत के सब जीव पर
क्रोध-बैर परित्याग कर समभाव चित्त में धार कर
क्षमा मैं करता सभी को अपने लिए माँगूँ क्षमा
यह धर्म-धारण स्वयं का यह नहीं कोई याचना"

- परमात्मप्रकाश भारिल्ल

इसी पुस्तक में से -

- **सही परिप्रेक्ष्य में 'क्षमा' की समझ एक विज्ञान (science) है और व्यवहार में इसका उपयोग करना एक कला (art) है।** (पृष्ठ-12)
- हमारा दुर्भाग्य ही है कि वह क्षमा-धर्म जो हमें सब संकटों से मुक्त करने की क्षमता रखता है, स्वयं ही हमें हम पर आया महासंकट-सा महसूस होने लगा है। (पृष्ठ-13)
- **सामान्य-सा दिखने वाला यह 'क्षमा' शब्द अपने-आपमें असीम शक्ति, क्षमता और संभावनाएँ समेटे हुए है। हमारा दुर्भाग्य है कि हममें से अधिकतर लोग इसकी सामर्थ्य को पहचानते ही नहीं हैं।** (पृष्ठ-13)
- 'क्षमा' एक ऐसी दौलत है जो सभी के लिए एक बहुमूल्य धन है, एसेट है, क्षमा माँगने वाले के लिए भी और क्षमा करने वाले के लिए भी। यह दोनों को ही निर्भार और निर्भय करती है। यह क्षमा माँगने वाले को आगत-अनिष्ट की आशंका-जनित व्याकुलता से तथा सुरक्षा-व्यवस्था के बोझ से मुक्त करता है और क्षमा करने वाले को बदला लेने की व्याकुलता-भरी जिम्मेदारी से। (पृष्ठ-14)
- **कैसी विडंबना है कि घृणित से घृणित अपराध करते हुए तो हमें शर्मिंदगी महसूस नहीं होती है। ऐसे कृत्य जो सचमुच सर्वमान्य शर्मनाक कार्य हैं, करते हुए तो हमें लज्जा नहीं आती है। ऐसे कर्म तो हम खुलेआम करते हैं। मात्र करते ही नहीं वरन् बड़े ही गौरव के साथ उनका सार्वजनिक तौर पर बखान भी करते हैं। इसके विपरीत धर्म और धार्मिक क्रियाएँ सर्वमान्य और सार्वभौमिक (सभी जगह) गौरवशाली कृत्य हैं और सभी धर्मों में क्षमा सबसे बड़ा धर्म है पर क्षमा माँगने में हमें शर्म आती है।** (पृष्ठ-15)
- आज इस बात का फैसला हो ही जाना चाहिए कि क्षमावाणी हमारा वैभव (asset) है या हम पर बोझ (liability)। यह हमारे लिए भार (burden) उतार-फेंककर निर्भार (light, unburden) होने का अवसर (opportunity) है या घोर-अपमान (Utter humiliation) की पीड़ा भोगने की सजा है। (पृष्ठ-16)
- **यदि हमें अपने अपराध का दंड भुगतने से ही बचना है तो हमें किसी से अपने अपराध की क्षमा माँगने में हिचक क्यों, हमें इसमें शर्म क्यों आती है? क्या यह कीमत हमारी कथित 'किसी भी कीमत पर' की सीमा से परे है, उससे भी बड़ी है? क्या अनंत-शांति और अभयदान पाने के लिए यह कीमत अधिक है।** (पृष्ठ-18)

क्षमावाणी
धर्म या धर्मसंकट

लेखक
परमात्मप्रकाश भारिल्ल
E-mail : parmatm@gmail.com
Mob. : 9057713567

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

क्षमावाणी : धर्म या धर्मसंकट : **परमात्मप्रकाश भारिल्ल**

प्रथम संस्करण : 3 हजार
25 मई, 2025
(संकल्प दिवस)

मूल्य : 15 रुपये

मुद्रक :
पॉपुलर प्रिन्टर्स
जयपुर

प्रकाशकीय

(प्रथम संस्करण)

श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल की नवीनतम कृति ''**क्षमावाणी : धर्म या धर्मसंकट**'' का प्रकाशन करते हुए हम गौरवान्वित हैं। अभी हाल ही में यह कृति धारावाहिक रूप से आठ कड़ियों में पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के पाक्षिक पत्र जैन–पथप्रदर्शक के सम्पादकीय लेखों के रूप में प्रकाशित हो चुकी है।

जनसामान्य के लिए अत्यंत उपयोगी यह विषय सदा के लिए सभी पात्र जीवों को सर्वत्र उपलब्ध रहे इस हेतु से उक्त लेखों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है।

ऐसा नहीं है कि इस पुस्तक में जैन–पथप्रदर्शक में प्रकाशित सभी लेखों को जैसे का तैसा ही प्रस्तुत कर दिया गया है। उसके बाद इसमें अनेक नए विषयों को जोड़ा गया है और भी अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गए हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह पुस्तक उन पाठकों के लिए एक बार फिर से पठनीय है जिन्होंने इसे जैन–पथप्रदर्शक में भी पढ़ लिया है।

पूर्व में लेखक की तीन अन्य कृतियों, यथा – 'अंतर्द्वन्द्व', 'क्या मृत्यु अभिशाप है' और 'क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है' के प्रकाशन के क्रम में यह लेखक की चौथी कृति है।

प्रस्तुत कृति में यथासंभव क्षमा के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, दिन–प्रतिदिन की घटनाओं के उदाहरण देकर, जनसामान्य की सरल भाषा में, सभी वर्गों के लिए उपयोगी, प्रबल तर्क और युक्तियों के साथ, रोचक शैली में क्षमा का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत कृति के रचनाकार एक सिद्धहस्त लेखक हैं, जिन्हें किसी भी विषयवस्तु को सर्वांग रूप से स्पष्ट करने में महारत हासिल है। क्षमा के विभिन्न पहलुओं का इसप्रकार का सटीक, सम्पूर्ण और बहुआयामी, तार्किक और युक्तिसंगत विश्लेषण अन्यत्र दुर्लभ है।

इस उत्कृष्ट रचना के लिए प्रस्तुत कृति के लेखक एवं टंकण कार्य हेतु श्री कमल शर्मा एवं सम्पूर्ण मुद्रण प्रबंधन हेतु डॉ. अखिल बंसल भी धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, सुधी पाठकों के लिए यह कृति उपयोगी सिद्ध होगी।

दिनांक : 18 नवम्बर, 2024 **– विपिन जैन 'शास्त्री' मुम्बई**

प्रकाशन मंत्री

अपनी बात

क्षमाशीलता जीवन जीने की सर्वश्रेष्ठ कला है। क्षमामयी जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन-शैली है। क्षमा हमारे जीवन की अधिकतम समस्याओं का सर्वश्रेष्ठ समाधान है। क्षमा हमारे जीवन में शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। क्षमा मोक्ष का साधन है। उत्तम क्षमादि-धर्म धारण करना ही मोक्ष है।

सामान्यजन के साथ समस्या यह है कि वह सब चीजों, बातों और घटनाओं को मात्र अपने ही नजरिये से देखता और समझता है। उनका परिप्रेक्ष्य क्या है और उक्त परिप्रेक्ष्य में उनका आशय क्या है यह सोचने-समझने की हमें आदत ही नहीं है। परिणाम यह होता है कि हम किसी कथन, व्याख्या अथवा उपदेश का सही अर्थ नहीं समझ पाते हैं।

क्षमावाणी के साथ भी यही हुआ है। विडंबना ही है कि इस महान चारित्रिक गुण और सर्वोत्कृष्ट धर्म को अब तक गलत परिप्रेक्ष्य में ही समझा गया है और इसीलिये किसी से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगना हमारे लिए सबसे अधिक कष्टकारक और अपमानजनक कृत्य बनकर रह गया है। जिस क्षमायाचना और क्षमाभाव धारण करने में जगत की और हमारे जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान निहित है, वही क्षमा की प्रक्रिया हमें सबसे अधिक यंत्रणापूर्ण प्रतीत होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में क्षमावाणी और क्षमाभाव के उन अनछुए पहलुओं पर सूक्ष्मता के साथ विचार किया गया है जिनकी ओर सामान्यतया किसी का ध्यान ही नहीं जाता है।

जिस प्रकार हम प्रतिदिन अपने घर का कचरा निकालकर फेंक देते हैं, इस प्रक्रिया से हमारा घर साफ़-सुथरा बना रहता है। यदि आज तक हमने कभी घर की सफाई का यह काम न किया होता तो आज हमारा यह घर हमारा घर नहीं रह जाता, कचराघर बन गया होता।

हमारा शरीर भी निरंतर सक्रिय रहकर शरीर में प्रविष्ट हुए अपशिष्ट पदार्थों को निरंतर बाहर फेंकता रहता है। उच्छ्वास के रूप में हानिकारक कार्बन-डाइऑक्साइड गैस तो यह 1 मिनिट में अनेकों बार बाहर फेंकता है, यह तो क्षण-भर भी अपने पास रखना इस शरीर को स्वीकार नहीं है। इसके अतिरिक्त

बुद्धिपूर्वक और प्रयासपूर्वक प्रतिदिन स्नानादि प्रक्रिया के माध्यम से शरीर के बाहरी विकारों को मिटाकर हम साफ़-सुथरे रहना पसंद करते हैं।

जब हम अपने घर को साफ रखते हैं, शरीर को साफ रखते हैं तो क्या आपको नहीं लगता है कि अपने मनो-मस्तिष्क को भी साफ रखना चाहिए? जिस प्रकार हमारे घर पर सीमित स्थान उपलब्ध होता है, अब यदि हम घर की सफाई न करें और उस उपलब्ध स्थान को कूड़े-कचरे का संग्रह करके भर डालें तो क्या होगा? ठीक उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क की क्षमता भी सीमित है। हमारी विचार करने की क्षमता भी सीमित है और याद रखने की भी। **हमें अपने मस्तिष्क को ज्ञान और अच्छे संस्कारों का भण्डार बनाए रखने के लिए और अच्छे विचारों के सृजन के लिए मस्तिष्क को विकारी भावों तथा कुविचारों से मुक्त रखना चाहिए।**

जैसे कम्प्यूटर में प्रोसेसर और मेमोरी की क्षमताएँ सीमित होती हैं, और उसमें कुकीज और unwanted, अनुपयोगी temporary files इकट्ठी होकर उसकी कार्यक्षमता को कम कर देती हैं, उसी प्रकार **हमारे मष्तिष्क में भी अनुपयोगी और दूषित विचार एकत्र होकर हमारी सोच-विचार की क्षमता को ख़त्म कर देते हैं।** ऐसे में हमारे मस्तिष्क में ज्ञान और संस्कारों की दौलत को एकत्र करने की तथा सद्‌विचारों के प्रवाह की क्षमता ही नहीं रहती है। इस घातक स्थिति से बचने के लिए और अपने कम्प्यूटर को कार्यक्षम बनाए रखने के लिए जिस प्रकार हम अपने कम्प्यूटर से समय-समय पर कुकीज और temporary files को डिलीट करते रहते हैं, उसी प्रकार **अपने मस्तिष्क की सभी क्षमताओं को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम समय-समय पर अपने लिए घातक दूषित स्मृतियों और संस्कारों को निकालकर सुसंस्कारों और ज्ञान के लिए स्थान खाली रखें।**

क्षमाभाव धारण करना वही प्रक्रिया है जिससे हम अपनी अनिष्ट स्मृतियों, बुरे संस्कारों और कुविचारों तथा द्वेषभावों और वैर के परिणामों को अपने मस्तिष्क से सदा के लिए निकालकर सदा के लिए चिंतामुक्त और निर्भार हो जाते हैं।

एक बात और! जैसे जब हम कम्प्यूटर से किसी फ़ाइल को एक फोल्डर से डिलीट करते हैं तो वह recycle bin में स्टोर हो जाती है, मूल से

नष्ट नहीं होती है, उसी प्रकार सिर्फ ऊपरी तौर पर क्षमायाचना करने अथवा क्षमा करने से वे विकारी द्वेष भाव जड़मूल से नष्ट नहीं होते हैं, हमारी वृत्तियों में संग्रहीत रहते हैं। तब जिस प्रकार हम कम्प्यूटर को फॉर्मेट करके अनुपयोगी फाइलों को सदा के लिए नष्ट करते हैं उसी प्रकार वीतरागी-क्षमाभाव धारण करके द्वेषादि विकारों को सदा के लिए जड़मूल से नष्ट करना योग्य है।

क्षमाभाव धारण करने और क्षमायाचना करने में यही मूलभूत अंतर है। वस्तुतः क्षमायाचना अन्तरंग में क्षमाभाव धारण करने पूर्वक होनी चाहिए, यही सही प्रक्रिया है।

क्षमा विशाल आयामी है। सामान्य सड़क के आदमी से लेकर वीतरागी संतों के योग्य क्षमा के अनेक रूप पाए जाते हैं- यथा जनसामान्य के बीच बहुतायत से प्रयोग में आने वाली **ऊपरी और उथली (superficial) 'सॉरी' से लेकर वीतरागी संतों की अंतरंग वृत्तिओं में व्याप्त कषायभावों के अभावरूप उत्तम-क्षमा तक इसके अनेक रूप हैं।**

प्रस्तुत कृति में जनसामान्य की धारणाओं, विचारों, प्रवृत्तियों और मानसिकताओं को ध्यान में रखते हुए क्षमा के विविध रूपों, उसके महत्त्व और प्रतिफल से सम्बन्धित लगभग सभी पहलुओं पर सर्वसामान्य की भाषा में विस्तार से विवेचन किया गया है। आशा करता हूँ कि सभी लोग इसे सही मायनों में जान-समझकर अपने जीवन में धारण करेंगे और अपने जीवन को चिंता और भय मुक्त, निर्भार, सहज और सुखी बनाएँगे।

जैसे-जैसे जीव की परिणति में वीतरागता का विकास होता जाता है उसका अन्तरंग क्षमाभाव और तदनुसार उसके बाह्य-व्यवहार में विशिष्ट क्षमापूर्ण आचरण पाया जाता है।

यदि हम चाहते हैं कि हमारा मस्तिष्क उच्चतम संस्कारों और ज्ञान का संग्रहालय बने और सदा उच्चकोटि के सद्विचार करने और चिंतन-मनन के लिए सक्षम बना रहे तो निश्चित ही हमें अपने चित्त में क्षमाभाव धारण करना चाहिए, उपयुक्त पात्रों के प्रति क्षमाभावना और क्षमायाचना का व्यवहार रखना चाहिये। यही हमारे हित में है। तथास्तु!

●

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

1.	श्री महेश जे. पारेख, मुम्बई	2100.00
2.	श्रीमती मधु अश्विनीजी जैन, जयपुर	1100.00
3.	श्री प्रमेशकुमारजी जैन, अहमदाबाद	1100.00
4.	श्रीमती रुचिता जैन, पूणे	1000.00
5.	श्रीमती मंजरी जैन, चण्डीगढ़	1000.00
6.	श्रीमती अनिता ध.प. डॉ. सतीश शाह, इण्डी	1000.00
7.	श्री खेमचन्दजी जैन सर्राफ, दमोह	1000.00
8.	श्रीमती किरन जैन, इन्दौर	1000.00
9.	स्व. शान्तिनाथ मल्लाप्पा सोनाज, अकलूज	1000.00
10.	श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन, कोटा	1000.00
11.	श्री महेश नरसोंगाडा पाटील, हेरले	1000.00
12.	श्री अभिनन्दन महेश पाटील शास्त्री, हेरले	1000.00
13.	सौ. प्रतिभा संजय चोगुले, हेरले	1000.00
14.	सुश्री माधुरी जैन मानसरोवर, जयपुर	1000.00
15.	श्री महावीरप्रसादजी जैन, आगरा	1000.00
16.	श्रीमती मीनाक्षी शाह, नासिक	1000.00
17.	पारुल जैन, उदयपुर	1000.00
18.	श्रीमती वीणा सतीशकुमारजी पाटोदी, इन्दौर	1000.00
19.	श्री चन्द्रकांतजी जैन, ललितपुर	1000.00
	कुल राशि –	**20300.00**

विषय–सूची

1.	क्षमा : सामर्थ्य और उसकी प्रासंगिकता	9
2.	क्षमा, क्षमावाणी और हम	15
3.	क्षमा : अपने अपराधों के दंड से बचने का उपाय	18
4.	क्षमा वीरस्य भूषणम्	20
5.	क्षमा का जादू	28
6.	क्षमायाचना में हिचक क्यों	34
7.	क्षमावाणी : क्षमा करना और क्षमा माँगना, दोमुखी प्रक्रिया	39
8.	मात्र क्षमाभाव नहीं, इसकी घोषणा भी आवश्यक	45
9.	क्षमाधर्म स्वाधीन क्रिया है, पराश्रित नहीं	48
10.	क्षमा करना और क्षमा याचना, दोनों मिलकर क्षमाभाव	50
11.	मात्र ज्ञात और अज्ञात अपराधों के लिए ही नहीं वरन् अपने चित्त में उत्पन्न अपराधभावों के उल्लेखपूर्वक क्षमायाचना ही सच्ची क्षमावाणी	53
12.	क्षमा धर्म तो प्रतिपल धारण करने योग्य है, किसी एक दिन नहीं	57
13.	क्या I am sorry बोलना क्षमावाणी है?	63
14.	सशर्त क्षमायाचना क्षमा नहीं	67
15.	'जहाँ तक मैं समझता हूँ' धर्म नहीं है	69
16.	धर्म स्वाधीन है, यह शर्तों पर नहीं होता है	71
17.	मात्र क्रोध की मंदता या अभाव का नाम क्षमा नहीं, क्षमा में चारों कषायों की मंदता और अभाव गर्भित है	76
18.	धर्मात्मा होने के लिए हमें वक्रता का त्याग करके सरल होना होगा	82
19.	हमें नीर–क्षीर विवेकी होना होगा	87
20.	पुरुषार्थ कषायों के शमन में है क्रियान्वयन में नहीं	91
21.	वास्तविक उत्तम क्षमा अथवा धर्म के दश लक्षण क्या हैं?	95
22.	कर्मों के उदय और प्रभावों की कार्य–प्रणाली	101
23.	धर्म का आश्रय तत्काल फलदायक होता है, कल नहीं	105
24.	उत्तम क्षमा	112

1

क्षमा : सामर्थ्य और उसकी प्रासंगिकता

मानवता की सबसे बड़ी समस्या है असहिष्णुता (nontolerance)। इस असहिष्णुता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला द्वेष और वैर का भाव। इस द्वेष और वैर से जन्म लेने वाली हिंसा और प्रतिहिंसा। हिंसा के कारण उत्पन्न होती असुरक्षा की भावना, असुरक्षा की भावना से उबरने (overcome) के लिए भारी-भरकम सुरक्षा व्यवस्था। सुरक्षा जैसे अनुत्पादक (nonproductive) काम के ऊपर बर्बाद होने वाला भारी समय, भारी धन और भारी प्रयास (efforts), जिनका मानवता के लिए कोई सार्थक और रचनात्मक (creative) उपयोग ही नहीं है।

हमें कल्पना ही नहीं है कि यदि हमारा देश, समाज और स्वयं हम इस अनुत्पादक सुरक्षा व्यवस्था के दायित्व से मुक्त हो जाएँ तो हमारी आवश्यकताएँ काफी कम हो जाएँ और हमारे लिए जीवन बहुत आसान हो जाए।

ये असहिष्णुता, द्वेष, वैर, हिंसा और असुरक्षा जैसी भावनाएँ मात्र हमारे आर्थिक संसाधनों का शोषण ही नहीं करती हैं वरन् ये हमारा मानसिक शोषण भी करती हैं, हमारी शांति भंग करके हमें उद्विग्न और बेचैन करती हैं।

जहाँ एक ओर हम अपनी उक्त चुनौतियों से निपटने के लिए इतनी बड़ी आर्थिक और मानसिक कीमत चुका रहे हैं और तब भी हम सफल नहीं हैं, दूसरी ओर हमारे पास एक ऐसा साधन (resource) मौजूद है जो बिना कोई कीमत चुकाए, बिना किसी प्रयत्नों (efforts) के हमारी उक्त समस्याओं का समाधान अत्यंत

प्रभावशाली ढंग से करने में सक्षम हैं, पर हमारा दुर्भाग्य कि हमारा ध्यान इस ओर जाता ही नहीं है।

यक्ष प्रश्न तो यह है कि ऐसा हो कैसे?

हम तो मनुष्य हैं और **हमने अपने लिए अनेकों कृत्रिम आवश्यकताओं का सृजन कर लिया है।** ऐसा करके हम कहते और मानते तो यह हैं कि हमने विकास किया है पर सच्चाई यह है कि **इसप्रकार हमने अपने इस स्वर्णिम–जीवन को भयावह जीवन–संघर्ष में बदल दिया है, जहाँ होड़ और भागदौड़ के सिवाय कुछ भी नहीं है।**

यह एक पृथक (separate) और व्यापक (broad, wide) विषय है एवं इसका पृथक से समीचीन (accurate) अनुशीलन (analysis) अपेक्षित है। यहाँ तो क्षमा की सामर्थ्य और उसकी प्रासंगिकता के विषय में चर्चा अपेक्षित है।

हमारे (मनुष्यों के) विपरीत पशुओं के जीवन में तो सिर्फ दो ही मूलभूत आवश्यकताएँ पाई जाती हैं – **पहली भोजन और दूसरी सुरक्षा।**

यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो भोजन पाना कोई इतनी बड़ी समस्या नहीं है पर सुरक्षा व्यवस्था उनके लिए भी एक गंभीर चुनौती है। विडंबना यह है कि ये दोनों एक दूसरे के साथ गहराई से जुड़ी हुई हैं। इनमें से एक आवश्यकता की पूर्ति का प्रयास दूसरी आवश्यकता की पूर्ति में बाधक बनकर उपस्थित हो जाता है। पशु यदि भोजन की तलाश में घर से बाहर निकले तो उसकी सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है और यदि सुरक्षा के लिए घर में बैठा रहे तो भोजन का संकट पैदा हो जाता है।

भोजन उनकी प्राथमिक (primary) और अपरिहार्य (unavoidable) आवश्यकता है और भोजन जुटाने की प्रक्रिया ही उनके लिए असुरक्षा की स्थिति सृजित (create) करती है।

होता यह है कि अपने लिए भोजन जुटाने हेतु उन्हें अपने सुरक्षित आवास से बाहर निकलना पड़ता है और जब वे ऐसा करते हैं तो स्वयं अपने लिए भोजन की तलाश में निकले अन्य मांसाहारी-हिंसक पशुओं के शिकार बन जाते हैं।

"**जीवं जीवस्य भोजनं**" की उक्ति के अनुसार चूंकि मांसाहारी पशुओं का भोजन ही अन्य पशु-पक्षी और जीव-जंतु हैं इसलिए **यहाँ उनका क्षमाभाव और क्षमायाचना उनकी प्राण रक्षा में सक्षम नहीं है। कारण स्पष्ट है कि यहाँ उनके बीच हिंसक व्यवहार किसी क्रोध अथवा वैर का परिणाम (result) है ही नहीं तो क्षमा से उसका निवारण कैसे हो सकता है?**

जहाँ-जहाँ संघर्ष और हिंसा का कारण आपसी राग-द्वेष और तद्जनित वैर-विरोध का भाव है, वहाँ-वहाँ इनके निरोध का उपाय क्षमाभाव और क्षमायाचना है।

सुरक्षा पशुओं की आवश्यकता अवश्य है पर इसके लिए उन्हें करना कुछ नहीं पड़ता है, क्योंकि सच तो यह है कि कुछ किया ही नहीं जा सकता है।

हम मनुष्यों के पास असुरक्षा की समस्या से निपटने के दो उपाय हैं – पहला तो यह कि अनेक प्रकार से सुरक्षा व्यवस्थाएँ करके हम अपने-आपको सुरक्षित करलें और दूसरा यह कि हम खतरों का ही उन्मूलन (elimination, eradication) कर दें और सुरक्षित हो जाएँ।

आपको क्या लगता है, कौन-सा उपाय आसान और प्रभावशाली है, आप कौन-सा उपाय करना चाहेंगे?

जाहिर है कि **पहला उपाय एक सतत-प्रक्रिया (continuous efforts) है, एक पल के लिए भी सावधानी हटी और दुर्घटना घटी।**

दूसरी बात यह कि यह एक अत्यंत खर्चीली और व्यय–साध्य (Costly and expenditure-intensive) प्रक्रिया है जो प्रत्येक के लिए संभव नहीं है।

दूसरा उपाय ऐसा है कि एक बार करलें और सदा के लिए समस्या से निजात (मुक्ति, salvation) पालें, और यह है भी बिल्कुल मुफ्त।

अब आप ही बताइये कि आप कौन–सा उपाय करना पसंद करेंगे ?

निश्चित ही दूसरा ही ना ?

तो आइये समझें कि क्या है वह दूसरा जादुई उपाय !

वह मंत्र है 'क्षमा', अन्तरंग में 'क्षमा–भावना' और प्रकट में 'क्षमायाचना'।

मात्र दो अक्षरों का यह साधारण–सा शब्द क्षमा अपने–आपमें अनंत सामर्थ्य समाये हुए है। अनंत सामर्थ्य और अनंत संभावनाएँ! बस आवश्यकता है सम्यक्पने इसकी सामर्थ्य को पहचानने की और यथासमय–यथास्थान (at proper time & proper place) सही प्रकार से इसके दोहन (exploration) की।

जहाँ एक ओर यह हमारे दिन–प्रतिदिन के व्यवहार में कदम–कदम पर उत्पन्न होने वाली गलतफहमियों और हैरानी–परेशानियों से हमें छुटकारा दिलाती है तो दूसरी ओर इसमें विश्व के सभी बड़े से बड़े संकटों का समाधान गर्भित है।

इस प्रकार यह क्षमा सार्वजनिक (for every one) और सार्वभौमिक (universal) है।

सही परिप्रेक्ष्य में क्षमा की समझ एक विज्ञान (science) है और व्यवहार में इसका उपयोग करना एक कला (art) है। आज आवश्यकता है सही अर्थों में इसे समझने की और योग्य ढंग से इसके उपयोग की।

हमारा दुर्भाग्य ही है कि वह क्षमाधर्म जो हमें सब संकटों से मुक्त करने की क्षमता रखता है, स्वयं ही हमें हम पर आया महासंकट–सा महसूस होने लगा है। हमारे जीवन में जब–जब कोई ऐसा प्रसंग आता है कि हमें क्षमायाचना की आवश्यकता पड़े अथवा हमें इसके लिए मजबूर होना पड़े तो हम धर्मसंकट का अनुभव करते हैं।

सामान्य–सा दिखने वाला यह 'क्षमा' शब्द अपने–आपमें असीम शक्ति, क्षमता और संभावनाएँ समेटे हुए है। हमारा दुर्भाग्य ही है कि हममें से अधिकतर लोग इसकी सामर्थ्य को पहचानते ही नहीं हैं। यही कारण है कि या तो हम इसे अपने ऊपर संकट मानकर इससे बचने और दूर भागने के प्रयास में लगे रहते हैं, तो दूसरी ओर कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनने इसे खिलौना ही बना दिया है और वे उठते–बैठते इसका उपयोग इस प्रकार से बहुतायत के साथ करते हैं कि यह अपना वास्तविक अर्थ ही खो बैठा है।

उपरोक्त दोनों ही प्रकार के लोग इस अति महान, गंभीर और गहरे 'क्षमा' शब्द की गहराइयों को जाने–समझे बिना मात्र इसकी सतह पर ही क्रीड़ाएँ कर रहे हैं।

जहाँ एक ओर बात–बात में बेधड़क–बेझिझक 'sorry' बोलने वाले मतवाले (Intoxicated) लोग इसके आशय (meaning) को समझे बिना ही sorry भी बोलते जाते हैं और साथ ही वही करतूतें दोहराते भी जाते हैं जिनके लिए अभी–अभी उन्होंने 'sorry, very sorry' बोला है। ऐसे लोग कभी इसके सम्यक् आशय को समझे ही नहीं हैं। इस प्रकार यह महान 'sorry' शब्द उनके लिए मात्र एक तकियाकलाम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

दूसरी ओर वे लोग जो गहरे संकट का सामना करने की स्थिति में भी, उस संकट से उबरने के साधन के रूप में भी **'माफी चाहता हूँ'** बोलने तक को तैयार नहीं होते हैं। ऐसे लोगों को 'माफी चाहता

हूँ' वाक्य बोलने को मजबूर होना उस संकट से भी ज्यादा बड़ा संकट प्रतीत होता है जो माफी न माँगने की स्थिति में उनके सामने मुँह बाए खड़ा है।

उक्त दोनों ही प्रकार के लोगों की विस्तृत चर्चा तो हम आगे प्रसंग आने पर करेंगे पर यहाँ हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि हम सभी लोगों ने अब तक न तो '**क्षमा**' का अर्थ जाना है और न ही इसमें निहित शक्ति को पहचाना है।

'क्षमा' एक ऐसी दौलत है जो सभी के लिए एक बहुमूल्य धन है, एसेट है, क्षमा माँगने वाले के लिए भी और क्षमा करने वाले के लिए भी। यह दोनों को ही निर्भार और निर्भय करती है। यह क्षमा माँगने वाले को आगत-अनिष्ट की आशंकाजनित व्याकुलता से तथा सुरक्षा-व्यवस्था के बोझ से मुक्त करती है और क्षमा करने वाले को बदला लेने की व्याकुलता भरी जिम्मेदारी से।

यदि क्षमा सही अर्थों में लागू हो पाए तो यह विश्व की अधिकतर समस्याओं का समाधान है। जो इसे अपनाएगा वह सुखी हो जाएगा। इसे सही अर्थों में समझकर क्रियान्वित करने के लिए ईमानदार प्रयासों की आवश्यकता है।

जैसाकि मैंने ऊपर कहा है कि - यद्यपि सतही तौर पर सारे विश्व में जनसामान्य के बीच बात-बात में 'I am sorry' बोलने का व्यवहार प्रचलित है और सभी जानते हैं कि इसके कितने फायदे हैं। इसके सहारे सभी लोग दिन-प्रतिदिन के कितने झंझटों से आसानी से बच जाते हैं, **पर इस sorry में वह गहराई कहाँ जो अपने अपराधों और भूलों के उल्लेखपूर्वक क्षमायाचना और अपने चित्त में व्याप्त सबके प्रति क्षमाभावना में है।**

समझने की बात तो यह है कि यदि सतही तौर पर (superficial) 'sorry' में इतनी शक्ति है तो अंतरंग की क्षमाभावना का चमत्कार कैसा होगा?

आवश्यकता है इसे गहराई से समझकर जीवन में अपनाने की।

●

2

क्षमा, क्षमावाणी और हम

हमारी (मानव मात्र की) सहज वृत्ति है कि हम किसी से क्षमा नहीं माँगना चाहते हैं। यदि हमारा वश चले तो घोर विनाश, सर्वनाश यहाँ तक कि कभी-कभी तो प्राणों की कीमत पर भी नहीं। बस यही कारण है कि हम क्षमा के इस विज्ञान से परिचित होते हुए भी इसके सच्चे लाभ से वंचित हैं। हमें लगता है कि यदि हमें किसी से माफी माँगनी पड़े तो यह घटना हमारे लिए मरणान्तक पीड़ा और घोर अपमान का विषय है।

कैसी विडंबना है कि घृणित से घृणित अपराध करते हुए तो हमें शर्मिंदगी महसूस नहीं होती, हमारे कृत्य ऐसे हैं जो सचमुच सर्वमान्य शर्मनाक कार्य हैं, ऐसे कार्य करते हुए तो हमें लज्जा नहीं आती है। ऐसे कर्म तो हम खुलेआम करते हैं। मात्र करते ही नहीं वरन् बड़े ही गौरव के साथ उनका सार्वजनिक तौर पर बखान भी करते हैं। इसके विपरीत धर्म और धार्मिक क्रियाएँ सर्वमान्य और सार्वभौमिक (सभी जगह) गौरवशाली कृत्य हैं और सभी धर्मों में क्षमा सबसे बड़ा धर्म है पर क्षमा माँगने में हमें शर्म आती है।

मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या धर्मात्मा होना शर्मनाक है? क्यों हमें अपराधी होना और कहलाना तो स्वीकार है पर धर्मात्मा होना नहीं?

कभी-कभी तो लगता है कि हमें पता ही नहीं कि किस व्यवहार के क्या मायने हैं। क्या इस मायने में हम अबोध-बालकों के सामान ही मासूम (मूर्ख) नहीं हैं?

क्या अब भी आपको नहीं लगता है कि हमें अपनी मन:स्थिति का उपचार करवाने की आवश्यकता है?

आज इस बात का फैसला हो ही जाना चाहिए कि क्षमावाणी हमारा वैभव (asset) है या हम पर बोझ (liability)। यह हमारे लिए भार (burden) उतार-फेंककर निर्भार (light, unburden) होने का अवसर (opportunity) है या घोर अपमान (Utter humiliation) की पीड़ा भोगने की सजा है।

हम जैन लोग '**क्षमावाणी**' पर्व के रूप में मनाते हैं। पर्व ही नहीं महापर्व। यह हमारे दशलक्षण और पर्युषण महापर्व के साथ सम्बद्ध है। कौन नहीं जानता है कि पर्व आनंद के अवसर हुआ करते हैं। तो क्या हमें क्षमा के व्यवहार में आनंद की अनुभूति नहीं होनी चाहिए? आज यदि हमें क्षमावाणी के अवसर पर किसी से क्षमा माँगना बोझिल-सा लगता है, कष्टदायक प्रतीत होता है, यह हमें आनंददायी प्रतीत नहीं होता है तो इसका तात्पर्य है कि हमारी समझ में कहीं कोई भारी भूल है। यह इस बात का प्रतीक है कि हम इसका (क्षमा का) स्वरूप और मर्म समझे ही नहीं। यह हमारे अज्ञान का, उत्तम क्षमा के वास्तविक अर्थ की नासमझी का और हमारे मानसिक स्वास्थ्य में विकार का प्रतीक है।

यदि किसी को मिश्री खिलाई जाए और वह उसे कड़वी लगे तो यह किसी गंभीर बीमारी के संकेत के अलावा और क्या हो सकता है?

यह हमारे विकार - क्रोध और मान को गलाने की प्रक्रिया है। यह मान तो जितनी जल्दी गल जाए उतना ही अच्छा है। हमारा अविवेक तो देखो! **अनादि से आज तक हमने मरखप कर इस मान**

को सहेजा, पाला–पोसा और आश्रय दिया है। इसकी रक्षा ही नहीं की वरन् इसे, आत्मगौरव और स्वाभिमान के नाम पर ही सही, महिमामंडित भी किया है।

बड़े विचित्र से हैं हम लोग। हमारे सोच का नमूना तो देखिये, हमारी मान्यता है कि – **'बदनाम हुए तो क्या नाम न हुआ?'** बस इसी पैटर्न पर **हमने स्वाभिमान जैसा महिमामंडित नाम देकर उस आत्मघाती मान कषाय को सहेजकर रखना सीख लिया जिससे हम स्वयं घृणा करते हैं, जिससे हम अत्यधिक त्रस्त और पीड़ित रहते हैं।**

क्या यह ऐसा ही नहीं है कि सरकार किसी ऐसे जघन्य आतंकवादी अपराधी की जीवनरक्षा के लिए सुरक्षा व्यवस्था पर करोड़ों रुपये खर्च करे जो देश और समाज की सुरक्षा के लिए भयानक ख़तरा है।

सरकार पर तो हमारा नियंत्रण नहीं है और उनकी अपनी मजबूरियाँ भी हैं, पर हम स्वयं के बारे में तो सम्यक् निर्णय कर ही सकते हैं ना!

•

Life Planning कैसे करें?

जो हो चुका है उसमें तो परिवर्तन सम्भव नहीं है, पर अब क्यों न बाकी बचे भावी–जीवन के बारे में यह प्रयोग किया जाए; औरों के जीवन को पढ़कर, उसे आत्मसात कर, विभिन्न अवस्थाओं व परिस्थितियों को, उनके अहसासों को कल्पना के धरातल पर ही स्वयं जीकर, क्यों न अपनी परिस्थितियों के अनुकूल, अपनी रुचि के अनुरूप, अपनी आवश्यकता के अनुसार, अपनी भावी जीवन–शैली की योजना तैयार की जाए, ताकि फिर कभी यह सदमा न भोगना पड़े कि – काश! पहले मालूम होता, मैं पहले ही यह सच्चाई समझ पाया होता तो मैं इस तरह ना जीता।

–अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ–(vii)

3

क्षमा : अपने अपराधों के दंड से बचने का उपाय

एक और बहुत बड़ी विचित्रता यह है कि यूँ तो हम निरंतर अपराध और दुष्कर्म करते हुए अपने दुष्कर्मों के दुष्परिणाम और दंड भुगतने से हमेशा बचना ही चाहते हैं, हर हाल में, हर कीमत पर। इसके लिए हम क्या-क्या नहीं करते हैं? दुनियाभर के जोड़-तोड़ और दबाब-प्रभाव का प्रयोग, शक्ति का उपयोग और जो कुछ भी संभव है, सबकुछ करते हैं। इसके लिए हम अपना सबकुछ दाँव पर लगा देते हैं। कभी-कभी तो सभी हदें पार करते हुए हम एक अपराध के दंड से बचने के लिए एक और, उससे भी ज्यादा जघन्य अपराध तक कर बैठते हैं। यहाँ तक कि अपराधों की एक नई शृंखला ही प्रारंभ हो जाती है। हमें यह होश ही नहीं रहता है कि हम क्या करने निकले थे और क्या करने बैठ गए। इसे और तो क्या कहा जा सकता है, सिवाय करुणावंत होकर यह कहने के कि – 'बेचारे हम!'

जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम इतनी बड़ी कीमत चुकाने के लिए तत्पर रहते हैं वही काम यदि हमारे क्षमा माँगने से सहज ही सम्पन्न हो सकता है तो **क्या कारण है कि हम क्षमा माँगकर दंड भोगने के भय से मुक्त नहीं होना चाहते हैं। यह बात मेरी समझ से परे है।**

यदि हमें अपने अपराध का दंड भुगतने से ही बचना है तो हमें किसी से अपने अपराध की क्षमा माँगने में हिचक क्यों, हमें इसमें शर्म क्यों आती है? क्या यह कीमत हमारी कथित '**किसी भी कीमत**' की सीमा से परे है, उससे भी बड़ी है? **क्या अनंत शांति और अभयदान पाने के लिए यह कीमत अधिक है।**

यह तो तय है कि यदि हम अपने कथित शत्रु से क्षमायाचना करके अपने अपराध-भाव से मुक्त नहीं हो जाते हैं तो हमें सदा यह

आशंका बनी ही रहती है कि वह मौक़ा पाकर कभी भी हमसे बदला लेने की कार्यवाही कर सकता है। ऐसे में हम सदा सशंक बने रहेंगे। हमें सदा सजग रहना होगा, अपने लिए सुरक्षा व्यवस्था करनी होगी। क्या आपको कल्पना भी है कि सुरक्षा व्यवस्था के मायने क्या होते हैं?

विश्वयुद्ध में अपनी पराजय के बाद अपमानित होकर जापान को अमेरिका के साथ सुरक्षा संधि का कड़वा घूँट पीना पड़ा। जापान को यह उस समय भले ही सजा जैसा और अपमानजनक लगा हो, पर यही कदम जापान के लिए वरदान साबित हुआ।

उक्त संधि के फलस्वरूप जापान की सुरक्षा की जिम्मेदारी अमेरिका ने संभाल ली और जापान ने सुरक्षा जैसे अनुत्पादक प्रयासों से अपना ध्यान हटाकर सम्पूर्ण शक्ति के साथ विकास कार्यों जैसे उत्पादक कार्यों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज उसी जापान ने तकनीक और उद्योग-धंधों के क्षेत्र में बेमिशाल उन्नति करली। ऑटोमोबाइल के क्षेत्र में तो उसकी प्रगति का आलम यह है कि उसने अमेरिका में ही अमेरिका की ऑटोमोबाइल इंडस्ट्री को पछाड़ते हुए अपने झंडे गाड़ दिए।

यह शक्ति है सुरक्षा जैसे अनुत्पादक कार्यों से अपना ध्यान हटाकर मात्र उत्पादक कार्यों में जुट जाने की।

क्षमायाचना के द्वारा अभय का आश्वासन पाकर हम सुरक्षा व्यवस्था जैसे अनुत्पादक प्रयासों से बच सकते हैं। इसी प्रकार क्षमादान देकर अपने तथाकथित शत्रुओं और प्रतिद्वंद्वियों से हिसाब चुकता करने के द्वेषपूर्ण और अनुत्पादक कार्यों से मुक्त होकर अपना सम्पूर्ण समय, शक्ति और श्रम रचनात्मक कार्यों में लगा सकते हैं।

इसप्रकार हम पाते हैं कि अन्यों के प्रति क्षमाभाव धारण करना और अपने द्वारा अन्यों के प्रति हुए ज्ञात-अज्ञात अपराधों के लिए सभी से क्षमायाचना स्वयं अपने लिए सृष्टि का सबसे बड़ा वरदान है। ●

4

क्षमा वीरस्य भूषणम्

किसी से अपने अपराध की क्षमा माँगने का अर्थ आप क्या समझते हैं?

जब-जब क्षमायाचना की बात चलती है तो हमारी दृष्टि में एक ही तस्वीर घूम जाती है - चेहरे पर दयनीय भाव लिए हुए, किसी के समक्ष अपने दोनों हाथ जोड़कर अश्रु बहाते हुए अपने अपराधों को माफ़ करने की दयायाचना करता, गिड़गिड़ाता हुआ व्यक्ति।

क्षमा यदि वीरों का आभूषण है, यदि वीरों में पाई जाती है तो क्षमावाणी का रूपक ऐसा नहीं हो सकता है जैसा ऊपर वर्णन किया गया है।

बस क्षमायाचना की यही छवि हम छद्म स्वाभिमानी लोगों को किसी से अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना करने से अनुत्साहित (demotivate) करती है, रोकती है।

आप सोच रहे होंगे कि मैंने छद्म स्वाभिमानी शब्द का प्रयोग क्यों किया। भाई! स्वाभिमान की रक्षा व्यवहार की सरलता से होती है, ढिठाई से नहीं। यदि हम सभी से सरलता का व्यवहार करेंगे तो हमसे किसी के प्रति अपराध होंगे ही नहीं।

यह हमारा भ्रम है कि किसी से क्षमायाचना करने से हमारा स्वाभिमान खंडित होता है। सच्चाई तो यह है कि यदि हमसे अपराध बन ही पड़ा है तो शर्मनाक कार्य तो वह हुआ है। अब क्षमायाचना करने से तो हमारे भग्न, खंडित स्वाभिमान की पुनर्स्थापना होती है, क्योंकि अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करके हम पुन: निरपराधी का गौरव पा लेते हैं। हमारा गौरव और स्वाभिमान खंडित तो तब हो गया था जब हम अपराध करके अपराधी हो गये थे।

आगम में कहा गया है – ''**क्षमा वीरस्य भूषणम्**''

'क्षमा वीरों का आभूषण है' अर्थात् वीर लोग क्षमा से सुशोभित होते हैं।

उक्त पद का सीधा और सही अर्थ यह है कि – क्षमा वीरों में ही पाई जाती है। यहाँ शोभित होने का आशय पाए जाने से है, क्षमा के प्रयोग से नहीं।

उक्त के विपरीत कमजोर और कायर लोग क्षमाहीन और करुणाहीन होते हैं। कहा भी गया है – ''**क्षीणा पुरुष निष्करुणा भवन्ति।**''

अगर इस वाक्य को उलट दिया जाए तो यह अधिक सटीक होगा, यथा – **क्षमाहीन और करुणाहीन लोग कमजोर और कायर होते हैं।** यदि इसी बात को अलंकारिक भाषा में कहना हो तो कहा जा सकता है कि – कायर और कमजोर लोग क्रूरता से शोभायमान होते हैं, या **क्रूरता (क्षमाहीनता) कायरों का आभूषण है।**

यह हमारा भ्रम है कि ऊपर से लादे गये आभूषण हमें शोभायमान करते हैं। सच तो यह है कि स्वयं सुशोभित (सुन्दर) व्यक्ति द्वारा धारण किये गए आभूषण भी शोभायमान हो जाते हैं।

अपात्र व्यक्ति द्वारा धारण किये गए आभूषण उसकी शोभा में अभिवृद्धि करने के बजाय उसे उपहास का ही पात्र बनाते हैं।

यूँ शायद यकायक आप मेरी बात से सहमत न हों, पर यदि मैं आपके सामने इसके साक्ष्य पेश कर दूँ तो आपको यह तथ्य स्वीकार करना ही होगा।

एक ऐसा व्यक्ति जो स्वयं सुशोभित (सुन्दर) न हो, यदि सुन्दर शृंगार करे और रमणीय आभूषण धारण कर ले तो उसकी प्रशंसा

नहीं होती है वरन् उसे लोक में निम्न प्रकार के मुहावरों से अभिहित किया जाता है –

- ''बूढ़ी घोडी, लाल लगाम''
- ''ये मुँह और मसूर की दाल''
- ''छछूंदर की खोपड़ी में चमेली का तेल''।

उक्त उदाहरण की ही तरह यदि क्षमाभाव हमारी अन्तरंग परिणति का अंग न हो तो जातक एक क्षमाधारी के रूप में शोभायमान नहीं होता है, क्षमा के ऐसे प्रदर्शन को ''**मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी**'' कहा और माना जाता है।

साहस और वीरता की ही तरह क्षमाभाव भी एक चारित्रिक गुण है, यह धारण करने की वस्तु है मात्र प्रदर्शन की नहीं।

जिस प्रकार लोक में भी मूल अन्तरंग चारित्रिक गुणों के अभाव में बाहरी रूप और सौन्दर्य सम्मान नहीं पाता है जबकि सामान्य और कुरूप दिखाई देने वाले आंतरिक गुणों के वैभव से युक्त लोग पूजे जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि क्षमा का मात्र बाह्य प्रदर्शन नहीं वरन अन्तरंग क्षमाभाव ही उपादेय और सम्माननीय है।

सामान्यत: ''**क्षमा वीरस्य भूषणम्**'' का अर्थ मात्र यह समझा जाता है कि – वीर लोग यद्यपि किसी के द्वारा अपने प्रति किये गए अपराधों का प्रतिशोध लेने में सक्षम हैं, फिर भी अगर वे बदले की कार्यवाही किये बगैर अपने अपराधी को माफ़ कर दें, उसके अपराध नजरअंदाज कर दें, तो इस उदारता के लिए उनकी सराहना होगी, प्रशंसा होगी।

नास्ति से इसका अर्थ यह भी माना जाता है कि कमजोर और कायर लोगों की क्षमा शोभायमान नहीं होती है क्योंकि ऐसा करना उनकी महानता नहीं मजबूरी माना जाता है।

मैं यह नहीं कहता हूँ कि उपरोक्त अर्थ गलत है, पर यह अपूर्ण अवश्य है। इसका एक दूसरा पहलू और भी है जिसकी ओर सामान्यत: किसी का भी ध्यान नहीं जाता है।

इसका दूसरा पहलू यह है कि यदि किसी वीर पुरुष से किसी सामान्यजन के प्रति कोई अपराध बन ही पड़े तो वे तुरंत उससे अपने दुष्कृत्य के लिए क्षमा माँग लेते हैं। उनकी यह क्षमायाचना उन्हें इसलिए भी जनसामान्य की दृष्टि में प्रशंसा का पात्र बना देती है कि यदि वे चाहते तो क्षमा न माँगते, तब भी सामने वाला अपेक्षाकृत कमजोर व्यक्ति उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता था। क्षमायाचना करने पर लोग उनकी सरलता के प्रशंसक हो जाते हैं, कायल हो जाते हैं। कभी-कभी तो उन्हें अपने इसी कृत्य के लिए महान लोगों की श्रेणी में भी रख दिया जाता है।

इस प्रकार उनकी यह क्षमायाचना उनका आभूषण बन जाती है।

चूंकि क्षमाधर्म में क्षमा करना और क्षमा माँगना दोनों ही शामिल हैं इसलिए उक्त सूत्र – ''क्षमा वीरस्य भूषणम्'' के दोनों अर्थ समझना ही योग्य है।

यहाँ एक और तथ्य उल्लेखनीय है कि वीरता मात्र एक एकल गुण नहीं वरन् एक गुण युगल है जिसमें वीरता के साथ, वीरता से पहले धीरता का उल्लेख किया जाता है।

धीरता का आशय है, किसी के आक्रमण को सह पाने का धैर्य और क्षमता, आक्रमण से विचलित न होने की क्षमता, जबकि वीरता का अर्थ है किसी आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब देने का साहस और क्षमता।

जो धीर न हो वह वीर नहीं हो सकता है। जैसे कि जिसमें स्वयं मुक्कों का वार झेलने की क्षमता न हो वह सफल मुक्केबाज नहीं हो सकता है क्योंकि वह तो सामने वाले के मुक्कों के वार के सामने टिकेगा ही नहीं तो अपने मुक्के चलाएगा कैसे?

क्षमाभाव का धारक धर्मात्मा धीर होता है जो अन्यों द्वारा स्वयं के प्रति किये गए अपराधों के वार को बिना विचलित हुए झेल जाता है इसलिए उसकी पलट कर वार न करने वाली वीरता शोभायमान होती है।

सामान्यत: वीरता शब्द का प्रयोग लड़ाई-झगड़ों और युद्ध के सन्दर्भ में ही होता है, इसलिए 'वीरता' सुनते ही हमारा ध्यान इनकी ओर ही चला जाता है।

अपने अपराधों की स्वीकृति का साहस भी एक ऐसा दुर्लभ गुण है जो सामान्यजनों में दिखाई नहीं देता है। इसी तरह किसी की भूलों और अपराधों को माफ़ कर देने की उदारता भी सर्वसामान्य में नहीं पाई जाती है। यही कारण है कि जिन विरले लोगों में ये गुण पाए जाते हैं वे विशाल जनसमुदाय के बीच पृथक् ही दिखाई देते हैं, शोभायमान होते हैं। निश्चित ही ऐसे लोग वीरों के बीच भी महावीर के रूप में सम्मान पाते हैं।

एक बात और समझने योग्य है। आप सभी लोगों को उनके अपराधों के लिए दण्डित नहीं कर सकते हैं। इसके लिए आपको शक्ति चाहिए, समय चाहिए, साधन चाहिए और साथ ही यह भी जरूरी है कि आपका अपराधी आपके प्रभाव में हो, उस पर आपका जोर चलता हो।

उक्त के विपरीत किसी को क्षमा करने के लिए आपको बाहर से कुछ नहीं चाहिए, मात्र स्वयं अपने परिणामों में विशुद्धि चाहिए। आप एक पल में एक साथ अनंत जीवों के प्रति क्षमाभाव धारण कर सकते हैं।

क्या उक्त तथ्य इस सत्य की स्थापना के लिए पर्याप्त नहीं है कि हम क्षमा धारण करने में तो सक्षम हैं, किसी को दण्डित करने के लिए नहीं; क्योंकि किसी परद्रव्य में किसी का कोई कर्तृत्व है ही नहीं।

वस्तुतः तो इस तथ्य और सत्य की स्वीकृति ही उत्तमक्षमा धर्म है कि – **कोई किसी का कर्ता है ही नहीं इसलिए कोई मेरे प्रति कोई अपराध करता ही नहीं है, कर ही नहीं सकता है और इसी तरह मैं भी किसी को दण्डित भी नहीं कर सकता हूँ। ऐसी श्रद्धा होने पर परिणति में स्वत: ही साम्यभाव स्थापित हो जाता है।**

मेरा प्रश्न तो यह है कि जो लोग कभी किसी से झगड़ा नहीं करते, युद्ध नहीं लड़ते, क्या वे वीर नहीं होते हैं। क्या वीर होने के लिए लड़ाई-झगड़ा करना जरूरी है? वीर होने के लिए युद्ध की आवश्यकता नहीं, हाँ! कदाचित् सामान्यजन के बीच यह वीरता के प्रदर्शन का साधन हो सकता है। **विचक्षण लोग तो बिना प्रदर्शन के ही गुणवानों के गुण पहचान लेते हैं।**

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने महावीर पूजन में कहा भी है –

यद्यपि युद्ध नहीं कियौ, नाहि रखे असितीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर।।

सरकारें युद्ध के दौरान वीरता के प्रदर्शन के लिए सम्मानस्वरूप '**महावीर चक्र**' प्रदान करती हैं। **मैं वीरता के इस मापदंड से कतई**

सहमत नहीं हूँ। अरे! हम और आप भी उस शहीद के ही समान वीर हो सकते हैं, फर्क सिर्फ इतना है कि उन्हें अपनी वीरता का प्रदर्शन करने का अवसर मिल गया, जो हमें नहीं मिला।

वीरता एक चारित्रिक गुण है, कोई प्रदर्शन की वस्तु नहीं। वीरता के प्रदर्शन का अवसर मिलना दुर्भाग्यपूर्ण है, सौभाग्य नहीं; क्योंकि वह विनाशकारी होता है। इसलिए वीरों की तो क्षमा ही शोभायमान होती है, क्रोध नहीं।

यदि प्रदर्शन को ही वीरता का पैमाना मानें तब भी वे सभी सिपाही, जो देश की रक्षा हेतु सुरक्षा-सेना में शामिल हुए, वीरों की श्रेणी में ही आते हैं, क्योंकि उन्होंने उसी दिन देश की रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान करने का अपना इरादा और संकल्प व्यक्त कर दिया था जिस दिन उन्होंने सेना में शामिल होना स्वीकार किया था।

मर जाना वीरता नहीं, अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सदा जी-जान से कटिबद्ध रहना वीरता है।

यह तो संयोग की बात है, इसे सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य कि जिन्हें लड़कर अपनी वीरता के प्रदर्शन का अवसर ही नहीं मिला; तो क्या वे वीर नहीं हैं?

यदि जगत के सभी वीर लोग अपनी वीरता के प्रदर्शन पर उतारु हो जाएँ तो जगत में त्राहिमाम् हो जाएगी, अराजकता मच जाएगी।

आत्मरक्षा के लिए वीरता का होना ही पर्याप्त है। अधिकतर मामलों में वीरता के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

जिस प्रकार सर्वज्ञता से पहले (साथ-साथ) वीतरागता भी आवश्यक है, अन्यथा वीतरागता के अभाव में सर्वज्ञता जीव को व्याकुल कर देगी, उसी प्रकार वीरता के पहले जीव में धीरता होनी आवश्यक है, अन्यथा जीव की वीरता 'बन्दर के हाथ में तलवार' के समान घातक हो जाएगी।

यदि हमें मरने-मारने में ही वीरता दिखाई देती है, अन्यथा नहीं, तो भी मेरा प्रश्न है कि स्वयं मरना वीरता है या शत्रु को मारना? हम तो मात्र उसे वीरगति को प्राप्त हुआ कहते हैं जो मर गया। जिसने अनगिनत शत्रुओं का संहार किया उसको तो कोई जानता ही नहीं।

दुनिया के पैमाने तो ऐसे ही हैं और दुनिया ऐसे ही चलेगी, पर यदि हमें अपना कल्याण करना है तो हमें ये पैमाने बदलने होंगे, हमें अपने पैमाने बनाने होंगे।

ऐसा भी तो नहीं है कि वीर लोग सदा लड़ते-झगड़ते ही रहते हैं। वे भी हम सभी जैसे ही सामान्य मानव हैं और उनके व्यक्तित्व में भी वे सभी गुण विद्यमान होते हैं जो हम सभी में पाए जाते हैं, फिर चाहे वे कमजोरियाँ हों या खूबियाँ।

निष्कर्ष यह है कि उत्तमक्षमा धर्म, धर्मवीरों में ही पाया जाता है। यहाँ अनेक तर्कों और युक्तियों से यह तथ्य स्थापित हो गया है कि – "**क्षमा वीरस्य भूषणम्**"

●

मैं तो रीता भी कहाँ हूँ? मैं तो बोझिल हूँ, अत्यन्त ही बोझिल। अनन्त अकृत्य-कृत्यों का बोझ तो लदा है मेरे ऊपर। कौन कहता है कुछ नहीं है कैपीटल अकाउंट में ट्रान्सफर करने के लिए? कर्जा तो है।

मैं निर्भार कहाँ हूँ? रीता व्यक्ति तो निर्भार होता है। निर्भारता तो आदर्श अवस्था है। पर मैं निर्भार कहाँ हूँ? मैं तो अत्यन्त बोझिल हूँ, अपने पापों से, अपने कर्मों से।

कौन कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं अपने साथ ले जाने के लिए? हाँ! ले जाने लायक कुछ नहीं, पर ले जाने के लिए तो है न! जीवन भर किये गये पापों का बोझ। – अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-5

5

क्षमा का जादू

अब यदि सीधी-सीधी अपने मतलब की दो-टूक बात की जाए तो हम कह सकते हैं कि - **अपने अपराध की क्षमा माँगने का अर्थ है कि हम अपने किये हुए अपराध का दंड नहीं भोगना चाहते हैं।**

यदि सचमुच ऐसा संभव है कि हमें अपने द्वारा किये गए दुष्कृत्यों का कुफल न भोगना पड़े, तो क्या यह व्यवस्था हमारे लिए वरदान नहीं है?

यदि हाँ, तो क्या हमें यह वरदान नहीं चाहिए?

यदि हाँ, तब फिर क्षमा माँगने में हिचक कैसी, हमें तो इसके लिए सदा इच्छुक और तत्पर होना चाहिए।

यदि अब भी हम क्षमा माँगने पर सहमत नहीं हैं तो इसका अर्थ है कि हम नादान हैं, नासमझ हैं। अभी हम परिस्थिति की गंभीरता नहीं समझ पा रहे हैं।

कोई समझदार व्यक्ति तो ऐसा कर नहीं सकता है।

एक उदाहरण से अपनी बात स्पष्ट करूँगा -

मान लीजिये आपने किसी से 1 करोड़ रुपये उधार लिए हों और अब आपके पास यह ऑप्शन उपलब्ध हो कि आप उससे अपने कर्ज (loan) माफी की अपील कर सकते हैं। ऐसा करने पर आपका कर्ज माफ़ हो भी सकता है अथवा न भी हो। तो आप क्या करेंगे?

निश्चित ही आप बिना वक्त गँवाए सिर्फ कर्ज माफ़ी की अपील ही नहीं करेंगे वरन् अपील करने के बाद भी चुप नहीं बैठेंगे और वह सब-कुछ, सही-गलत, उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक, न्यायपूर्ण अथवा अन्यायपूर्ण, जो भी संभव है करने का प्रयास करेंगे जो किया जा सकता है। क्योंकि आप मानते हैं कि कर्ज माफी आपकी सब समस्याओं का समाधान है। यह आपके लिए वरदान है।

यदि सरकार घोषणा करे कि जिन लोगों ने सरकार से या बैंकों से कर्ज ले रखा है, यदि वे अपना कर्ज माफ़ करवाना चाहते हों तो माफीनामे का फॉर्म भरकर जमा करवा दें। फॉर्म जमा करने की समय सीमा सिर्फ आज तक है, तो ऐसा कौन होगा जो फॉर्म जमा करवाने की लाइन में नहीं लग जाएगा?

क्या यही बुद्धिमानी भी नहीं है कि बजाय इसके कि हम जीवन भर कर्ज के बोझ तले दबे रहकर आकुलतामय जीवन व्यतीत करें, हम प्रमाद और अहंकार का त्यागकर अपना कर्ज माफ़ करवा लें और भारमुक्त होकर सुकून भरा जीवन जियें?

जब हम इस नीति पर चलने वाले लोग हैं तब फिर हमें अपने अपराधों का फल (सजा) भोगने से बचने के लिए किसी से माफी माँगने में हिचक क्यों?

दरअसल हम वृत्ति से भी बनिए हैं। हमें सिर्फ रुपये-पैसे की भाषा समझ में आती है। रुपयों का कर्ज हमें भारभूत लगता है और उससे मुक्ति में हमें आनंद मिलता है। अपने पापों और अपराध-बोध का भार हमें भार-सा ही नहीं लगता है और उससे मुक्त होना हमारी चाहतों में शामिल ही नहीं है। बातें हम कुछ भी क्यों न करें, पर शायद हमें इस बात का भरोसा ही नहीं है कि अपने पापों का फल हमें भोगना ही होगा। इसीलिये हम उनसे माफी पाने के बारे में इतने गंभीर भी नहीं हैं।

क्षमा तो धर्म है और क्षमा धारी जीव धर्मात्मा। धर्मात्मा जीव तो पूज्य होते हैं, सम्मान के पात्र होते हैं। तब क्षमायाचना में हिचक कैसी, शर्म क्यों, अपमान का अहसास क्यों?

इसका तो एक ही कारण हो सकता है कि शायद हम क्षमा का मतलब ही नहीं समझते हैं, हमें क्षमा के प्रतिफल का ज्ञान नहीं है, तद्‌जनित भारहीनता और निर्भीकता का अहसास नहीं है।

शर्मिंदगी का काम तो अपराध करना है और क्षमा माँगना तो उस शर्म से उबरने का उपाय है।

आज भय मानवता की सबसे बड़ी समस्या है, अन्य किसी भी समस्या से बड़ी और विकराल। तो हमारा भय दूर करके हमें निर्भय करने वाली क्षमा हमारे लिए वरदान हुई या अभिशाप?

क्या आप जानते हैं कि वर्तमान की सबसे बड़ी समस्या भय है। आज हर व्यक्ति भयभीत है। मात्र व्यक्ति ही नहीं व्यक्तियों के समूह (समाज) भी भयभीत हैं, और तो और राष्ट्र भी भयभीत हैं। यह एक विश्वव्यापी व्याधि है।

भय हम सबको कई तरह से प्रभावित करता है। अनर्थ कभी हो या न हो पर भयभीत व्यक्ति सदा अनर्थ की आशंका से बोझिल बना रहता है। भयभीत व्यक्ति की सोच-विचार की क्षमता और सही निर्णय लेने की योग्यता कुंठित हो जाती है। ऐसा व्यक्ति, समाज या राष्ट्र अपने विकास की योजनाओं और उपक्रमों जैसे रचनात्मक विषयों पर काम करने के बजाय अपनी रक्षा के उपायों जैसे अनुत्पादक कार्यों (non-productive efforts) में ही उलझा रहता है। उनकी शक्ति, श्रम, ध्यान और धन सबकुछ बस अपनी रक्षा के प्रयासों में जुट जाता है। यह सब करने के बाद अंतत: मिलता क्या है, हाथ में क्या आता है? कुछ नहीं!

क्या आपने कल्पना भी की है कि यदि हमें अपनी सुरक्षा के उपायों से मुक्ति मिल जाए तो क्या चमत्कार हो सकता है?

जब हम किसी के प्रति कोई अपराध करते हैं तो हम भयभीत हो जाते हैं कि अब वह हमसे बदला लेगा, इस डर से हम निरंतर चिंतित रहते हैं।

मान लीजिये हमें किसी शत्रु की ओर से आक्रमण और अपने जीवन के ऊपर खतरे का भय बना रहता है। इससे बचने के लिए हम अपने घर के दरवाजे पर दिन की तीन शिफ्टों में एक-एक चौकीदार की नियुक्ति कर देते हैं। महीने के अंत में तीनों को मिलाकर 50,000/- रुपयों का वेतन चुकाते हैं। अब मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि इन पचास हजार रुपयों के खर्च के बदले में हमें क्या मिला?

आप कहेंगे कि सुरक्षा मिली, हमारे यहाँ चोरी नहीं हुई, हम पर आक्रमण नहीं हुआ। पर भाईसाहब! यह तो 'नहीं हुआ' हुआ ना! हुआ क्या? हम तो जैसे थे वैसे के वैसे बने रहे।

अरे! सुरक्षित तो वे भी रहे जिनके यहाँ गार्ड नहीं थे। सच्चाई तो यह है कि गार्ड हमारी रक्षा नहीं करते हैं, वे तो हमें भय से राहत पहुँचाते हैं। जो लोग भयभीत होते हैं वे गार्ड तैनात करते हैं। यदि किसी और विधि से हमारा भय दूर हो जाए तो हमें गार्ड तैनात न करने पड़ें। वह अन्य विधि है क्षमायाचना और क्षमाभाव।

हमने अपने घर पर सुरक्षा गार्ड तैनात किये तो इससे हमें कोई उपलब्धि नहीं हुई, हमारी तरक्की नहीं हुई। रचनात्मक कुछ नहीं हुआ। इन तीन चौकीदारों के बजाय यदि हम अपने घर पर एक माली की नियुक्ति कर लेते तो वह हमारे घर की बगिया को हरा-भरा कर देता, उसमें फल लगते, फूल महकते।

यदि हम एक रसोइये की नियुक्ति कर लेते तो दिन में चार बार सही समय पर डाइनिंग टेबल पर सुस्वादु भोजन और नाश्ता सुसज्जित मिलता। कुछ उत्पादक (productive) होता, कुछ रचनात्मक (creative) होता।

उनसे मिले इस सहयोग के कारण आपका जो श्रम बचता, समय बचता उसका उपयोग आप अपने विकास के कार्यों में करते, आपकी अपनी कार्यक्षमता दोगुनी हो जाती।

अरे! अगर चौकीदार की यही राशि बचाकर आप अपने घर में कोई उपयोगी वस्तु ले आते तो वह जीवन के 10-20 वर्ष आपके काम आती। आपके जीवनक्रम को सरल और सुविधासम्पन्न बनाती।

यदि इसी राशि से आप अपने लिए सोना या संपत्ति खरीद लेते तो वह स्वयं आपको तो जीवन भर सुशोभित करती ही, आपके बाद भी पीढ़ियों तक आपके परिजन भी उनका उपभोग करते।

यह सब कब होना संभव होता जब आप भयभीत न होते और आपको सुरक्षा के उपाय न करने पड़ते। और भयमुक्त होने का उपाय है क्षमायाचना।

यदि माफी माँगने पर भी कोई हमें माफ़ न भी करे, तो भी उसकी शत्रुता की तीव्रता खत्म हो जाती है, वह घातक नहीं रहती।

मजबूत से मजबूत सुरक्षा कवच हमें उस तरह से भयमुक्त नहीं कर सकता है, जो काम माफी कर सकती है क्योंकि माफी हमें सिर्फ एक से माँगनी है जबकि सुरक्षा का हम कितना ही चौतरफा इंतजाम करलें तब भी कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई कसर रह ही जाएगी, और वही कसर घातक हो सकती है।

माफी न माँगने की स्थिति में कोई और हमारा नुकसान करे या न करे पर स्वयं हमारा अपराधबोध ही हमें परेशान करता रहेगा, अन्दर ही अन्दर हमें खोखला करता रहेगा।

यदि हमसे कोई अपराध बन ही पड़ा है तो तुरंत माफी माँगकर उस पर पानी फेर देना ही उचित है। यही हमारे हित की बात है।

जो भय के साये में जीता है वह बर्बाद होता है। यदि व्यक्ति या परिवार भयभीत रहता है तो परिवार बर्बाद होता है, यदि समाज और राष्ट्र भयभीत होकर जीने के लिए अभिशप्त है तो राष्ट्र बर्बाद होता है। सबका चैन-सुकून छिन जाता है, उत्पादन और विकास रुक जाता है, शक्ति और समृद्धि क्षीण हो जाती है।

आज सभी देशों के विशाल रक्षा बजट इसी भय के परिणाम हैं कि कहीं शत्रु हमें क्षति न पहुँचा सके। अरे भोले! **शत्रु तो क्षति पहुँचाए या न पहुँचाए, पर उसके भय से तू अपने-आपको कितना नुकसान पहुँचा रहा है इसकी तुझे कल्पना ही नहीं। शत्रु के आक्रमण से तो नुकसान तब और तब-तक होगा जब शत्रु आक्रमण करेगा और जब-तक आक्रमण जारी रखेगा, पर उसके भय से निरंतर भयभीत तू इस घुन का शिकार बनकर स्वयं अपने-आपको प्रतिपल क्षतिग्रस्त कर रहा है।**

जब शत्रु से बचने के लिए अथवा शत्रु को बर्बाद करने के लिए तू इतना कुछ कर सकता है तो इसके स्थान पर शत्रुता का ही नाश करने के लिए क्यों कुछ नहीं करता?

शत्रु से बचाव के उपाय एक सतत प्रक्रिया है जिसे निरंतर जारी रखना सबकी बाध्यता है। 'सावधानी हटी और दुर्घटना घटी' यदि हम 100 वर्ष जागरूक और सावधान रहे पर एक दिन के लिए

गाफिल हुए, लापरवाह हुए तो हमारी वह 100 वर्ष की साधना किसी काम की नहीं। हमारी उस एक दिन की लापरवाही का लाभ लेकर शत्रु हमें नष्ट कर सकता है। इस प्रकार हमारे नष्ट हो जाने की संभावना सदा बनी ही रहेगी, पर शत्रुता खत्म करने के सिर्फ एक बार किये गए उपक्रम और प्रयास हमें सदा के लिए भयमुक्त कर देंगे।

शत्रुता नष्ट करने के समान कोई रणनीति नहीं हो सकती और इसका दूसरा कोई विकल्प (alternate) नहीं हो सकता है। बस एक ही रास्ता है – 'क्षमा'।

क्यों नहीं भारत और पाकिस्तान (देश व सरकारें) प्रतिवर्ष एक बार आपस में क्षमावाणी का कार्यक्रम सम्पन्न कर लेते हैं? ऐसा कर लेने से सुरक्षा बजट से, सुरक्षा सेनाओं से और विध्वंसक हथियारों के ऊपर होने वाले विशाल अनुत्पादक खर्च से देश को मुक्ति मिल जाए। सैनिकों के ह्यूमन पावर का उपयोग देश के उत्पादक और विकास कार्यों में हो सके।

आज यही प्रक्रिया रूस और यूक्रेन के बीच अथवा इजरायल और लेबनान के बीच भी सम्पन्न हो जाए तो सम्बन्धित सभी पक्ष बर्बादी से बच जाएँ।

कहने का तात्पर्य यह है कि **एक क्षमा सारे जगत के सारे के सारे समीकरणों को मानवता के हित में बदल डालने में सक्षम है।**

यक्ष प्रश्न तो यह है कि यदि **क्षमा इतनी प्रभावशाली नीति, कूटनीति, औजार, हथियार और उपाय है तो हम सही प्रकार से यथास्थान इसका प्रयोग करते क्यों नहीं हैं?**

●

6

क्षमायाचना में हिचक क्यों

क्षमायाचना के प्रति हमारी हिचक के अनेक कारणों में से एक महत्त्वपूर्ण कारण है क्षमा पाने के प्रति विश्वास का अभाव। हमें यह भरोसा ही नहीं होता है कि हमारे क्षमा माँगने पर कोई हमें क्षमा कर ही देगा। बस इसलिए हमारी दिलचस्पी क्षमा माँगने में नहीं रहती है। पर भाई मेरे! **क्या हम अपने जीवन में मात्र वही काम करते हैं जिनमें सफलता की शत प्रतिशत गारंटी (hundred percent surety) हो? हम संभावनाओं के आधार पर भी तो काम करते हैं ना!** और संभावनाएँ भी कैसी? 50-60 प्रतिशत नहीं वरन् हम लाखों में एक की सफलता की संभावना पर भी प्रयत्न करते हैं। ऐसा करने वाले लोग भी सिर्फ इक्का-दुक्का नहीं हैं वरन् लाखों होते हैं, तभी तो हम लाखों में एक होते हैं न! क्या UPSC की परीक्षाओं में ऐसा ही नहीं देखा जाता है जहाँ चुने जाने वालों की संख्या सिर्फ सैकड़ों (hundreds) में होती है और उस दौड़ में शामिल होने वाले लोगों की संख्या लाखों में होती है। तब क्यों न हम अपने लिए क्षमा पाने का उपक्रम करें?

क्या लाटरी में ऐसा नहीं होता है, हजारों-लाखों लोग लाटरी का टिकिट खरीदते हैं और पुरस्कार मिलता है सिर्फ कुछ ही लोगों को। यह सब जानते हुए भी लोग लाटरी का टिकिट खरीदते ही हैं ना!

अरे! जगत में हम लगभग सभी काम संभावनाओं के आधार पर ही करते हैं, संभावनाएँ भी कोई 80 या 90 प्रतिशत नहीं वरन् अत्यंत क्षीण, सिर्फ 2-4 प्रतिशत ही।

अरे! डॉक्टर कहता है कि ऑपरेशन में बचने की संभावना मात्र 5-10 प्रतिशत ही है, तब भी तो हम ऑपरेशन करवाना ही पसंद करते हैं?

चोरी भी कोई हमारे ही घर बार-बार तो होती नहीं, जीवन में कभी एकाध बार ही हमारे घर पर चोरी होने की संभावना हो सकती है, पर उस एक बार की संभावना को टालने के लिए हम जीवन भर चौकीदार रखते हैं।

जब हम इतनी छोटी-छोटी संभावनाओं के आधार पर भी इतने बड़े-बड़े समर्पण करने को तैयार रहते हैं तो क्यों नहीं क्षमादान मिलने या न मिलने की बराबरी की संभावना होते हुए भी हम इसे नहीं अपनाते हैं?

प्रयत्न करने वालों को सफलता मिले या न मिले, पर यह तो तय है कि दौड़ में वे लोग तो कभी विजेता होंगे ही नहीं जो दौड़ में शामिल ही नहीं हुए। सच तो यह है कि उपलब्धि के लिए किये जाने वाले प्रयत्न, सफल होने वाले लोगों के लिए उपलब्धि की अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्यायों का सिलसिला (उपलब्धि की प्रक्रिया, आधारशिला) होते हैं।

एक विडंबना यह भी है कि **हम संसारी लोग स्वभाव से भी कषायी हैं (कसाई नहीं)। हमें कषायों के शमन में नहीं कषायों के पालने में आनंद आता है, फिर परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न हो। इसलिए हमारे सारे प्रयत्न और क्रियाकलाप कषायों के पोषण करने वाले होते हैं, कषायों के अभाव के नहीं। एक कारण यह भी है कि हम क्षमायाचना से बचने का प्रयास करते हैं।**

हमारी वृत्ति ऐसी है कि - हमें तो दो-दो हाथ करने में मजा आता है। यदि क्षमाभाव धारण करके या क्षमायाचना करके हम

कषाय को शांत कर देंगे तो क्या मजा आयेगा? यदि कषाय चालू रहती है तो 'देखते हैं किसकी माँ ने कितना दूध पिलाया है, हमने भी कोई चूड़ियाँ नहीं पहनी हैं' की तर्ज पर बड़ा मजा आयेगा।

एक बात और! हमें अपना मिशन जारी रखने के लिए पर्याप्त ईंधन भी तो चाहिए ना! यदि हम इसी तरह क्षमाभाव धारण करके हमारे कषायों के भण्डार (stock) को नष्ट करते रहेंगे तो संसार में टिकेंगे कैसे? आखिर हमें भी तो कषायों के चक्रवर्ती जीवों के साथ होड़ (competition) में सफल होकर अपने लिए संसार में स्थान सुरक्षित बनाए रखना है ना! **संसार में टिके रहना ही जिनका मिशन हो उन्हें कभी अपने जीवन में क्षमा को जड़ें जमाने का अवसर ही नहीं देना चाहिए क्योंकि यह अमरबेल (क्षमा) जहाँ पनप गई, अपने आश्रयदाता (कषाय और संसार) को नष्ट करके ही मानेगी।**

जिस प्रकार जगत में सम्पन्न लोग तो प्रतिदिन ही स्वादिष्ट व्यंजनों का सेवन करते हैं, अच्छे वस्त्र धारण करते हैं और हर्षोल्लास के साथ जीवन व्यतीत करते हैं उसी प्रकार धर्म-सम्पन्न ज्ञानी धर्मात्मा तो सदा ही अपने अन्तरंग में प्रकट एकदेश (आंशिक) वीतरागता के परिणामस्वरूप प्रकट हुई कषायों की मंदता और तद्जनित वृत्ति की सरलता से युक्त सहज-सरल जीवन जीते हैं उनके जीवन में तो प्रतिदिन-प्रतिपल ही क्षमावाणी है।

जिस प्रकार दरिद्री लोगों को न तो प्रतिदिन पूरी-पकवान उपलब्ध होते हैं और न ही नये वस्त्रादिक। ऐसे लोग उक्त वस्तुओं के उपभोग के लिए त्योहारों के आने का इन्तजार करते हैं। इसी प्रकार हम वीतरागता में दरिद्री, रागी-द्वेषी लोग प्रतिदिन-प्रतिसमय अपने चित्त में क्षमाभावों को धारण नहीं कर पाते हैं और वर्ष में एक बार क्षमावाणी के दिन यह कार्य संपन्न करते हैं।

इस प्रकार यह क्षमावाणी हम दरिद्री लोगों के लिए वर्ष में एक बार आने वाला हर्षोल्लास और आनंद का महापर्व है। यदि हम वर्ष में एक बार भी यह करने को तैयार नहीं तो क्या हम वीतराग मार्ग में महादरिद्री जीवों की श्रेणी में नहीं माने जायेंगे?

फैसला आपको करना है कि आप किस श्रेणी में आना चाहते हैं।

क्षमा माँगने का तात्पर्य है अपने द्वारा किसी के प्रति किये गए अपराधों की स्वीकृति, अपने पूर्वकृत दुष्कृत्यों के प्रति प्रायश्चित्त और भविष्य में उन्हें न दोहराने का संकल्प, यह दोनों ही कार्य हमारे स्वयं के अन्दर ही तो संपन्न हो रहे हैं, इसमें किसी पर के सहयोग की आवश्यकता ही क्या है?

वास्तव में तो क्षमा कोई आदान-प्रदान (लेन-देन) की वस्तु नहीं वरन् आत्मा का अन्तरंग परिणाम है, धारण करने योग्य धर्म है, आत्मा का स्वभाव है।

जब यह जीव क्षमाधर्म धारण करता है तब कषायों की मंदता का प्रभाव उसके बाह्य व्यवहार में भी स्वत: ही दिखाई देने लगता है। उसके मुख से भी तद्रूप भाव प्रकट होने लगते हैं। ऐसे क्षमाधारी जीव के व्यवहार में भी ऐसी सरलता स्वत: प्रकट हो जाती है जिससे अन्य जीव स्वत: ही उसके प्रति द्वेषभाव त्यागकर मित्रता का भाव धारण कर लेते हैं। इस प्रकार सभी जीवों का स्वयं के प्रति वात्सल्य भाव देखकर यह जीव स्वत: ही उनकी ओर से अनिष्ट की आशंका से मुक्त हो जाता है, अनिष्ट के भय से मुक्त हो जाता है, निर्भय हो जाता है। यही क्षमाधर्म धारण करने का सच्चा प्रतिफल है।

अब तक हमारी चर्चा मात्र क्षमायाचना तक ही सीमित रही है पर वास्तविक क्षमा का स्वरूप ऐसा नहीं है।

●

7

क्षमावाणी : क्षमा करना और क्षमा माँगना, दोमुखी प्रक्रिया

जब-जब क्षमावाणी की चर्चा चलती है, हमारा ध्यान अनायास ही मात्र क्षमा माँगने की क्रिया पर ही केन्द्रित हो जाता है। मैं मानता हूँ कि कदाचित् हममें से अधिकतर लोगों को इस बात का तो अहसास तक नहीं है कि **क्षमा मात्र एकमुखी प्रक्रिया नहीं है वरन् यह एक ऐसी दोमुखी प्रक्रिया है जो एक ही जीव के अन्तरंग में एक साथ घटित होती है। इस प्रक्रिया में क्षमा करना और क्षमा माँगना दोनों शामिल हैं।**

वास्तविक क्षमा मात्र एकपक्षीय हो ही नहीं सकती है। अन्तरंग में जब क्षमाभाव प्रकट होता है तब वह दोतरफ़ा ही होता है। इसमें क्षमा करना और क्षमा माँगना दोनों ही समान रूप से शामिल होते हैं।

औपचारिक क्षमावाणी में कदाचित् ऐसा हो भी जाए कि कोई मात्र क्षमायाचना तो करे पर वह अन्य जीवों के प्रति क्षमाभाव धारण न भी करे अथवा इसके उलट वह स्वयं तो अन्य जीवों के प्रति क्षमाभाव धारण करले, पर अन्यों से क्षमायाचना करने से बचे। **ऐसा इसलिए संभव है कि ऐसे जीवों के वास्तविक क्षमाधर्म तो प्रकट हुआ नहीं है, मात्र परम्परा का निर्वाह करने हेतु वे ऐसा कर रहे हैं, इसलिए वे इसमें मनमानी करने का प्रयास करते हैं।**

जहाँ **अन्तरंग में वास्तविक क्षमाधर्म प्रकट हुआ हो वहाँ तो ऐसी अनीति संभव नहीं है। क्षमाधर्म में तो क्षमा करना और क्षमा माँगना दोनों ही समान रूप से शामिल हैं।**

क्षमावाणी का तात्पर्य मात्र क्षमा माँगना नहीं वरन् इसमें क्षमा करना और क्षमा माँगना दोनों शामिल हैं। इतना ही नहीं, यदि इसमें क्रम निर्धारित करना हो तो अन्य जीवों को अपनी ओर से क्षमा करने का नंबर पहले आयेगा क्षमा माँगने का नंबर बाद में। यद्यपि वास्तविकता में अंतरंग में इसमें कोई क्रम नहीं पड़ता है। अन्तरंग में तो क्षमाभाव प्रकट होने पर क्षमा करने और क्षमा चाहने की क्रिया एक साथ ही सम्पन्न होती है। पर बात जब वाणी पर आती है तो वाणी में तो क्रम पड़ ही जाता है। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाणी में क्षमा माँगने से पहले अपनी ओर से सभी को क्षमा प्रदान करने का नंबर आता है, जैसाकि इस गाथा से स्पष्ट है –

खामेमि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्वभूएसु, वैरं मज्झं ण केण वि।।

हिंदी पद्यानुवाद –

मैं क्षमा सभी को करता हूँ, सब जीव क्षमा मुझको करदें।
मैत्री भाव हो सब जीवों से, वैर विरोध सभी हरलें।।

उक्त गाथा में कहा गया है कि – मैं अपनी ओर से सभी जीवों को क्षमा करता हूँ और सब जीवों से प्रार्थना करता हूँ कि वे भी मुझे क्षमा कर दें। जगत के सभी जीवों से मेरा मैत्री-भाव हो और सभी जीव आपस में वैर-विरोध का भाव त्याग दें।

इस प्रकार उक्त गाथा में पहले अपनी ओर से सभी जीवों को क्षमादान दिया गया है तत्पश्चात् उनसे अपने लिए क्षमायाचना की गई है। यही तर्कसंगत भी है।

धर्म की आराधना हमने की है, कषायें हमारी मंद हुई हैं, शांति हमारे चित्त में स्थापित हुई है। परिणामस्वरूप हमने अपने चित्त में

अनिष्ट भासित होने वाले परद्रव्यों, खास तौर पर अन्य जीवों के प्रति वैर के जो भाव सँजोये हुए थे, हम उनके अनिष्ट की कामना करते थे और मौके की तलाश में रहते थे कि 'कब अवसर मिले और कब उन्हें मजा चखाऊँ' **ऐसे भाव आज अनाथ हो गए। उनके पालनहार जो कषाय भाव थे जब वे ही मंद हो गये तो अब उन्हें कौन आश्रय दे? इस प्रकार स्वत: ही अपने चित्त में सभी के प्रति क्रोध और वैर का भाव विलीन हो जाना ही क्षमा धारण करना है।**

एक बात और! अन्यों के प्रति अपने चित्त में क्षमा धारण करना एक स्वतन्त्र प्रक्रिया है। इसमें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि पहले कोई हमसे क्षमा माँगे तब हम उसे क्षमा करें। हम सबके प्रति वैर-विरोध का भाव त्यागें। इसमें हमें किसी अन्य के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार यह एक स्वतंत्र प्रक्रिया है। क्षमा माँगने पर कोई हमें क्षमा करे या न करे, यह तो उन पर निर्भर करता है।

यदि कोई हमें क्षमा नहीं करता है तो क्रोध और वैर की अग्नि में वह जलेगा, बदला लेने के कर्तृत्व के बोझ से वह बोझिल रहेगा। हम तो अपने अपराधबोध का त्याग कर निर्भार हो ही जाते हैं।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि कोई हमें क्षमा करने को तैयार हो जाए तो हम क्षमा माँगने को तैयार हैं, पर जब कोई हमसे क्षमा माँग ही नहीं रहा है तो हम उसे क्षमा कैसे करें, यह तो गले पड़ने जैसी बात हो गई, 'मान न मान मैं तेरा मेहमान', यह कहाँ का न्याय है?

अरे भाई! किसी ने तेरे प्रति कोई अपराध किया और तेरे मन में उसके प्रति बदला लेने की तीव्र भावना पैदा हो गई है, जिसने तेरा सुख-चैन हर लिया है और रातों की नींद हराम कर रखी है। इसके कारण तू अत्यंत बेचैन है और अब तू शांति चाहता है। तो तू अपने अन्दर के वैरभाव का त्याग कर दे और अपनी क्षमाभावना उसके

समक्ष प्रकट करके, भविष्य में ऐसा न होने देने का भाव प्रकट करके निर्भार हो जा। तुझे इस बात का आग्रह क्यों है कि पहले वह क्षमा माँगे तब मैं क्षमा करूं।

बेचैन तू है, शांति तुझे चाहिए, क्षमाभावना तेरे चित्त में प्रकट हुई है और शुरुआत वह करे, यह कैसे संभव है ?

संभव है कि वह तो अभी भी तीव्र कषाय के आवेग में हो। तो क्या तू भी अपनी कषाय नहीं त्यागेगा और कषाय की भट्टी में जलता रहेगा ?

यदि तेरी शर्त यही है तो तेरा कल्याण तो कभी हो ही नहीं सकता है, क्योंकि सब द्रव्यों का परिणमन तो स्वतंत्र है। परपदार्थ तो तेरी आकांक्षा के अनुरूप परिणमेंगे नहीं।

यदि हमारे चित्त में उपरोक्त दुविधा उत्पन्न होती है तो एक बात स्पष्ट है कि हमें अपना लक्ष्य स्पष्ट ही नहीं है। हमें यह मालूम ही नहीं कि हम क्या पाना चाहते हैं। हम यह भी नहीं जानते हैं कि हम जो पाना चाहते हैं वह हमें मिलेगा कैसे ?

होता यह है कि हम पाना चाहते हैं कुछ और, और हमारे प्रयत्न उसके एकदम विपरीत होते हैं।

ये कैसी विसंगति (contradiction) है हमारे व्यक्तित्व में, हमारी प्रवृत्ति तो यह है कि हम मन से चाहते तो यह हैं कि कोई हमारे दोष न देख पाए, न देखे, हमें या किसी को न बतलाये। कोई हमें अपने किये गए अपराधों के लिए दण्डित न करे, उन्हें भूल जाए। इसका मतलब क्या हुआ ? यही न कि हम अपने द्वारा किये गए दुष्कर्मों की सजा भुगतना नहीं चाहते हैं, हम चाहते हैं कि हमारे अपराध माफ़ हो जाएँ। दूसरी ओर हम किसी से माफी भी नहीं माँगना चाहते हैं और न ही किसी के द्वारा किया गया कोई अपराध भूलना ही चाहते हैं।

हम अपने लिए माफी चाहते हैं पर हम माफी माँगना नहीं चाहते हैं। दूसरी ओर हम चाहते हैं कि लोग हमसे माफी माँगें पर हम किसी को माफ़ करना नहीं चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हम माफी न माँगे और वे हमें माफ़ कर दें तथा दूसरे हमसे माफी माँगें और फिर भी हम उन्हें माफ़ न करें। क्या यह विचित्र नहीं है?

अरे! वे भी तो हम जैसे ही हैं, उसी मिट्टी के बने हैं जिससे हम बने हैं। उनकी भावनाएँ, क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ भी तो वैसी ही होती हैं जैसी हमारी। **क्या यह हमारी वक्रता नहीं है, यह हमारा छल नहीं है, हमारी वृत्ति की बेईमानी नहीं है। क्या यह उचित है कि हम अलग प्रकार से व्यवहार करें और उनसे अलग अपेक्षा रखें? क्या हमें सुधरना नहीं चाहिए?**

ज्ञानी धर्मात्माओं के समझाने पर हम अन्यों को क्षमा करने को तैयार हो भी जाएँ पर, क्षमा माँगने के लिए अपने-आपको तैयार करना हमें बड़ा कठिन दिखाई देता है।

अरे! हमारे ऐसे व्यवहार से तो हमारी चाहत के विपरीत परिणाम आयेगा। उसके माफी माँगने से हम तो उसे माफ़ कर देंगे और हम माफी नहीं माँगेंगे तो वह हमें कैसे माफ करेगा। यानी कि हमें उसके अपराध भूल जाने होंगे, उसे दण्डित नहीं करना होगा और वह हमारे अपराध याद रखेगा, उनके लिए हमें दण्डित भी करेगा। यानी कि परिणाम हमारी चाहत के बिल्कुल विपरीत आयेगा।

यह **हमारी चाहत में सबसे बड़ा विरोधाभास है पर हम हैं ही ऐसे।** मैं नहीं जानता कि हमारी इस वृत्ति को क्या नाम दूँ, इसे समझदारी तो कहा नहीं जा सकता है।

अरे भाई! यह न तो कोई न्याय-अन्याय की बात है और न ही कोई लेन-देन के व्यवहार वाला व्यापार। यह तो धर्म है, यह तो अपने हित की बात है, स्वयं अपने हित की बात!

सभी जीवों को क्षमा करके हम उस अनंत कर्तृत्व के भार से मुक्त हो जाते हैं जो हमने उनसे बदला लेने के संकल्प के रूप में अपने ऊपर लाद रखा था। हम भारहीन हो जाते हैं। क्या यह स्वयं अपने हित में नहीं है? क्या हम अपनी सुख-शांति के लिए दूसरों की ओर से पहल का इन्तजार करें?

क्षमा तो आत्मा का धर्म है और जो धर्म को धारण करता है वह सुखी होता है। यदि हम क्षमाधर्म को धारण करेंगे तो हम सुखी होंगे और अन्य लोग भी इसे धारण करेंगे तो वे भी सुखी होंगे। इसके विपरीत क्रोध और वैर कषाय हैं, जो लोग क्रोध और वैर पालेंगे वे आकुलित और दु:खी होंगे। क्षमावाणी मात्र कोई वाणी का व्यापार नहीं है वरन् यह अन्तरंग कषाय के त्याग का प्रसंग है।

अरे भोले! दस दिन तक धर्म की आराधना तो तूने की है ना, कषायें तो तेरे मंद हुई हैं, धर्म तो तेरे अन्दर प्रकट हुआ है, दूसरों के नहीं। जब उनकी कषायें ही मंद नहीं हुईं, उनके अन्दर क्षमाधर्म ही प्रकट नहीं हुआ तो वे कैसे तेरे समान एक धर्मात्मा की तरह का आचरण और व्यवहार करेंगे, वे कैसे तुझसे माफी माँगेंगे? जब तुझे धर्म प्रकट हुआ है तब भी तू ही क्षमा धारण करने को तैयार नहीं, तरह-तरह की शर्तें लगा रहा है, तो धर्म की उपलब्धि के बिना वे कैसे क्षमा माँगेंगे?

•

दरअसल मृत्यु के प्रति हमारी हिचक का मूल कारण है, तुरन्त चल पड़ने की हमारी तैयारी का न होना। – क्या मृत्यु अभिशाप है?, पृष्ठ-31

8

मात्र क्षमाभाव नहीं, इसकी घोषणा भी आवश्यक

यूँ तो **क्षमा आत्मा का धर्म है जो आत्मा में प्रकट होता है, इसमें वाणी का कोई योगदान नहीं है।** धर्म की आराधना के फलस्वरूप जब कषायें मंद हो जाती हैं तो आत्मा में क्षमाभाव प्रकट होता है। जब क्षमा से आप्लावित हृदय छलक उठता है तो क्षमा स्वत: ही वाणी से बह निकलती है।

क्षमा का एक व्यावहारिक रूप और है। 'जंगल में मोर नाचा, किसने देखा' आपने अपने चित्त में क्षमाभाव धारण कर लिया, पर उन लोगों को तो मालूम नहीं जो आपके द्वारा बदला लेने की संभावना से डरते हैं, वे तो सशंकित ही बने रहे। आपके निमित्त से उनका चित्त उद्वेलित ही बना रहता है, तब वे आत्मरक्षा की भावना से भी आपके ऊपर प्रहार कर सकते हैं। इसी प्रकार आपने वाणी से अपने अपराधों के लिए क्षमा नहीं माँगी तो वे लोग जो आपसे बदला लेने की भावना सँजोये बैठे हैं, तो आपके विरुद्ध सक्रियता पूर्वक षड्यंत्र करते ही रहेंगे ना! तब आप उनके आक्रमण से सुरक्षित कैसे हुए, आप भी सशंकित और भयाक्रांत बने ही रहेंगे।

वाणी और व्यवहार में दिखाई दिए बगैर आपके हृदय में स्थित क्षमाभाव पूरी तरह से प्रभावी नहीं हो पायेगा, इसलिए जो क्षमाभाव आपने हृदय में धारण किया है वह हमारी वर्तमान भूमिका में व्यावहारिक तौर पर वाणी में आना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। क्योंकि हम सामाजिक प्राणी हैं, समाज में रहते हैं और सामाजिक व्यवहार वार्तालाप के द्वारा संचालित होते हैं।

प्रसंग आ ही गया है तो मैं यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात और स्पष्ट कर देना उपयुक्त समझता हूँ। **अन्तरंग में हम जो हैं, जैसे हैं उसकी बाहरी घोषणा भी महत्त्वपूर्ण है। यह अत्यंत आवश्यक और व्यावहारिक (practical) है जबकि घोषणा न होना अव्यावहारिक (impractical) है।**

यदि हमने रात्रि भोजन और कंदमूल का सेवन छोड़ दिया है तो सबको यह मालूम भी होना चाहिए, ताकि यदि वे आपको भोजन के लिए आमंत्रित करें तो आपके लिए उपयुक्त इंतजाम करें। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते हैं तो वे आपको बुलाएँ ही नहीं अथवा आपके ना आने का बुरा तो न मानें।

यदि आप किसी निर्धारित समय पर स्वाध्याय करते हैं तो परिजनों और समाज को इस बात की जानकारी होनी चाहिए, ताकि उस समय वे आपको फोन करके डिस्टर्ब न करें, आपसे मिलने ना आयें। यदि वे चाहते हैं कि आप उनके किसी कार्यक्रम में अवश्य आयें तो वे उस समय को बचाकर अपने कार्यक्रम का समय निर्धारित करें। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें आपके न आने अथवा उन्हें अटेंड न करने का बुरा मानना अनुचित माना जाएगा।

मान लीजिये हम संसार से विरक्त हो गये हैं, अब हमें संसार के व्यवहार निभाने में रुचि नहीं रही है तो हमें इस बात की घोषणा कर ही देनी चाहिए, ताकि न तो कोई हमसे इस बात की अपेक्षा रखे और न ही इसका बुरा माने। यदि हम इसकी घोषणा नहीं करेंगे तो लोग हमारे आचरण, व्यवहार और कृत्य को अनुचित मानेंगे। बात सिर्फ अनुचित मानने तक ही सीमित नहीं रहेगी वरन् इसका दुष्प्रभाव हमारे विरक्त जीवन पर भी पड़ेगा, यह हमें निर्बाध साधना नहीं करने देगा। लोग निरंतर हमें डिस्टर्ब करते ही रहेंगे। वे आपके पास

आयेंगे, आपको आमंत्रित करेंगे, आपके न मानने पर आपसे मनुहार करेंगे। जबरदस्ती भी कर सकते हैं। यदि आप उनके जश्न में शामिल न हुए तो गिला-शिकवा करेंगे, उलाहना देंगे, बुरा मानेंगे, हो सकता है आप पर आक्रमण तक कर डालें।

इसमें उनका कोई अपराध भी नहीं है, क्योंकि उन्हें आपकी अन्तरंग परिणति में हुए मूलभूत परिवर्तन की जानकारी भी तो नहीं है ना!

यदि कोई व्यक्ति अपने वैराग्य और गृहत्याग की घोषणा किये बगैर, दीक्षा लिए बगैर जंगल को चला जाए तो लोग उसे ढूँढेंगे, पुलिस की मदद लेंगे। इस सबके कारण उसकी साधना में विघ्न पड़ेगा। यदि वही विधिवत घोषणापूर्वक ऐसा करेगा तो लोग व्यर्थ ही उसे परेशान नहीं करेंगे।

आत्मार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह शासन के कानूनों का विधिवत पालन करे और समाज की मर्यादाएं भंग ना करे। क्योंकि यदि वह देश के क़ानून और समाज की मर्यादा का पालन नहीं करेगा तो समाज अपनी कार्यवाही करेगा और कानून अपनी। ऐसे में वह आत्मसाधना कैसे करेगा?

इसी प्रकार मन में क्षमाभाव प्रकट होने पर उसकी घोषणा भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। यह दिखावा नहीं व्यावहारिकता है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

जगत के लोग अपने त्याग या वैरागी वृत्ति की घोषणा को मान-बढ़ाई की भावना मानते हैं, पर यह उचित नहीं है। यह तो व्यावहारिकता है। यह तो सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है, यदि ऐसा न हो तो जगत की व्यवस्थाएँ ध्वस्त हो जायेंगी। अराजकता फ़ैल जायेगी।

●

9

क्षमाधर्म स्वाधीन क्रिया है, पराश्रित नहीं

अरे! धर्म धारण करने में किसी से होड़ कैसी? कोई अन्य व्यक्ति धर्म धारण करे या न करे, तुझे उनसे क्या? तेरा परिणमन स्वतंत्र है और उनका स्वतन्त्र। जब वस्तुस्वरूप में ही दो द्रव्यों के बीच कोई संबंध नहीं है तो तू कैसे उनके बीच संबंध स्थापित कर सकता है? फिर जगत में तो तू किसी से ऐसी उल्टी होड़ नहीं करता है। यदि कोई प्रमादी होकर घर में पड़ा रहे तो तू तो प्रमादी नहीं हो जाता है। तू तो अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ करता है। **तब धर्म में ही क्यों बहाने बनाता है?**

पार्श्वकुमार के धर्म प्रकट हुआ था, उनके तीन कषाय के अभावरूप वीतरागता प्रकट हुई थी, परिणामस्वरूप उनके चित्त में कमठ के प्रति कोई वैर-विरोध का भाव नहीं रह गया था, पर कमठ तो कषाय के रथ पर सवार था, उससे तो पार्श्वकुमार के समान ऐसी उम्मीद कैसे की जा सकती थी? तो क्या पार्श्वकुमार भी कमठ के प्रति वैर का भाव पाले ही रहते, तब वे भगवान कैसे बनते?

अरे मायाचारी, अब तो सुधर जा! तू अब भी धर्म से बचने के बहाने खोजता फिरता है, अब ये गोरखधंधा छोड़कर धर्म के मार्ग पर आने का पुरुषार्थ कर, कान खोलकर सुन ले! **'एक तो धर्म शर्तों पर नहीं होता है और दूसरा धर्म पराधीन नहीं है।'**

जमाने के भुक्खड़ किसी दरिद्री को 56 भोग के भोजन का न्योता मिले और वह शर्तें लगाए तो उसके जैसा अभागा और कौन होगा? अरे! तुझे धर्म की प्राप्ति हुई है, निराकुल होने का मार्ग

मिला है और तू किसी के माफी माँगने का इन्तजार कर रहा है? अगर वो माफी नहीं माँगेगा तो क्या तू क्षमा ही नहीं करेगा, इसी तरह कषाय पालता रहेगा, क्रोध की अग्नि में जलता रहेगा?

तब तो हो गया तू धर्मात्मा! अरे परद्रव्य तो अनंत हैं और उनका परिणमन स्वतंत्र है, अनंत काल में भी उन सभी की अन्तरंग परिणति तेरी परिणति के समान अथवा तेरी कामना के अनुकूल नहीं होगी, तो क्या तू सदा क्रोध ही धारण किये रहेगा, तो तेरा कल्याण कैसे होगा? तब तो तू और तेरा धर्म उनका गुलाम हो गया।

''ना नौ मन तेल होगा और ना राधा नाचेगी'' **ना वे सब कभी क्षमा माँगेंगे और ना तू कभी क्षमाधर्मधारी धर्मात्मा बन पायेगा।**

मैंने कहा ना कि **'धर्म पराधीन नहीं होता है'** जब भी कभी कोई प्रसंग उपस्थित हो तो इस कसौटी पर कस कर सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह धर्म है या नहीं! **– जहाँ पराधीनता है वह धर्म हो ही नहीं सकता।**

यदि धर्मात्मा होना है तो पराधीनता की वृत्ति को त्याग देना। धर्म तो स्वाधीनता का नाम है। किसी के अपराधों को लक्ष्य से निकाल कर उनसे बदला लेने की भावना के त्याग का नाम किसी को क्षमा कर देना है। उसी प्रकार अपने द्वारा किसी के प्रति किये गए अपराधों की स्वीकृति और भविष्य में उन्हें न दोहराने का निश्चय ही क्षमा–याचना है। यह दोनों ही कार्य हमारे स्वयं के अन्दर ही तो सम्पन्न हो रहे हैं, इसमें किसी पर के सहयोग की आवश्यकता ही क्या है?

निश्चय से यही क्षमा धर्म है।

●

10

क्षमा करना और क्षमा याचना, दोनों मिलकर क्षमाभाव

अब जो बात आपके समक्ष रखने जा रहा हूँ यह सुनकर तो आप चौंक ही जायेंगे।

वस्तुत: क्षमा करना और क्षमा माँगना ये दोनों पृथक्-पृथक् क्रियाएँ हैं ही नहीं। ये तो एक ही क्षमाभाव के दो अलग-अलग नाम हैं।

कैसे? आओ समझें!

● जब हम किसी को क्षमा प्रदान करते हैं तो हमारा भाव क्या होता है? यही न कि - मेरे मन में आपके अथवा किसी के प्रति कोई क्रोध अथवा वैर का भाव या दुर्भावना नहीं है और **अब मैं आपके प्रति कोई अनिष्ट, शत्रुतापूर्ण कृत्य नहीं करूँगा।**

इसी प्रकार

● जब हम किसी से क्षमायाचना करते हैं तब हम उससे क्या कहते हैं? यही न कि - मेरे द्वारा आपके प्रति जाने-अनजाने में जो भी अपराध हुआ हो उसके लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हूँ। अब तक जो हुआ सो हुआ अब आगे से **मैं आपके प्रति कोई अपराध, यानी कि अनिष्ट, शत्रुतापूर्ण कृत्य नहीं करूँगा।**

उपरोक्त दोनों ही अवसर पर हमने एक ही संकल्प तो व्यक्त किया है न, कि - **मैं आपके प्रति कोई अनिष्ट, शत्रुतापूर्ण कृत्य नहीं करूँगा। इस प्रकार दोनों एक ही कृत्य तो हुए, अलग-अलग कहाँ रहे?**

किसी के प्रति जो अनिष्ट कृत्य हमसे हो चुका है उसमें तो कोई परिवर्तन हो नहीं सकता, इसलिए उसके प्रति तो मात्र अफ़सोस ही व्यक्त किया जा सकता है जो प्रतीकात्मक है, उसमें और तो कुछ किया नहीं जा सकता है। मात्र भविष्य में ही कुछ अनिष्ट न करने के लिए ही आश्वस्त किया जा सकता है।

इसमें एक और बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण रहस्य है। इस ओर किसी का ध्यान जाता ही नहीं है।

क्षमा भावना में भविष्य में कुछ अनिष्ट न करने का आश्वासन तो दिया जाता है, पर कुछ भला और इष्ट करने का नहीं।

ज़रा ध्यान दें –

आपने अपराधभाव किसे कहा था?

''बुरा किया'' को ही अपराध कहा था ना?

इसमें 2 शब्द हैं –

1. बुरा

2. किया

अब तक हमने जो **'बुरा किया' वह अपराधभाव था, उसके विपरीत है 'क्षमाभाव'। अब हमने क्षमाभाव धारण किया है तो अब तक जो किया गया है उसके विपरीत करना होगा।**

1. 'बुरा' का विपरीत है 'अच्छा'।

2. 'किया' का विपरीत है 'नहीं करूँगा'।

यदि **'बुरा'** और **'किया'** दोनों को उलट दिया जाए तो हो जाएगा – ''अच्छा नहीं करूँगा''।

यह तो **''बुरा किया'' का समानार्थक ही हो गया।**

यदि हमें इसे सही अर्थों में उलटना है तो 'बुरा' और 'किया' दोनों में से किसी एक को ही उलटना होगा। जैसे कि –

1. अच्छा करूँगा। **2. बुरा नहीं करूँगा।**

अब आप ध्यान देंगे तो पायेंगे कि **क्षमाभाव में 'अच्छा करने' को नहीं कहा गया है वरन् 'बुरा नहीं करने' को कहा गया है।**

इसमें एक बड़ा रहस्य छुपा हुआ है – इसमें कुछ करने को नहीं कहा गया है, कुछ नहीं करने को कहा गया है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता तो है नहीं, तब कुछ करने को कैसे कहा जा सकता है?

अच्छा करने का भाव और बुरा करने का भाव दोनों ही वस्तु के अकर्त्ता स्वभाव के विपरीत हैं। चूँकि वस्तु का स्वभाव धर्म है इसलिए अच्छा और बुरा करने का भाव उसके विपरीत होने से, वस्तु के स्वभाव का घात करने वाले होने से अधर्म हैं।

इस तरह अंतत: तो अकर्त्तापना ही क्षमाधर्म है यह स्थापित हुआ। क्षमा तो धर्म का एक लक्षण है। यह अकर्त्तापना ही धर्म है।

●

हमें भगवान की आवश्यकता कब पड़ती है?

जब ऐसे किसी भगवान की कल्पना हमारे चित्त में आती है, जो हमें हमारे स्वयंकृत कर्मों का फल भोगने से बचा सके; तब ऐसा कोई सर्वशक्तिमान परमात्मा तो हमें दिखाई देता नहीं, वह तो मात्र हमारी तथाकथित आस्था के सिंहासन पर ही विराजमान रहता है; पर इस तरह के कार्य सम्पन्न कर देने का दावा करने वाले कुछ तथाकथित छोटे–छोटे परमात्मा हमें अपने इर्द–गिर्द ही मिल जाते हैं और तब 'मरता, क्या न करता' इस नीति के अनुसार हम सहज ही उनकी गिरफ्त में आ जाते हैं।

– क्या मृत्यु अभिशाप है?, पृष्ठ–(xii)

11

मात्र ज्ञात और अज्ञात अपराधों के लिए ही नहीं वरन् अपने चित्त में उत्पन्न अपराधभावों के उल्लेखपूर्वक क्षमायाचना ही सच्ची क्षमावाणी

यहाँ एक तथ्य दृष्टव्य है। सामान्यतया हम सभी लोग पुरानी चली आ रही परंपरा का पालन करते हुए क्षमावाणी के दिन अपने मित्रों, पुरजनों, परिजनों (kin) और सगे-सम्बन्धियों (relatives) से अपने द्वारा किये गए सभी ज्ञात एवं अज्ञात अपराधों के लिए प्रकट में क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

हमारी **उक्त परम्परा में दो प्रकार की विसंगतियाँ प्राय: दिखाई देती हैं –**

एक तो यह कि – हम मात्र उन्हीं लोगों के साथ क्षमायाचना की परम्परा का निर्वाह करते हैं जो हमारे इष्टमित्र और प्रियपात्र हैं। जिनके प्रति हमारे चित्त में अथवा हमारे प्रति उनके चित्त में कोई वैर-विरोध का भाव अथवा अपराधबोध होता ही नहीं है।

हम उन लोगों तक तो पहुँचते ही नहीं हैं, इस अवसर पर हम उनकी तो उपेक्षा ही कर देते हैं जिनके प्रति हमने सचमुच अपराध किये हैं अथवा जिन्होंने हमारे प्रति अपराध किये हैं और जो हमारी क्षमायाचना तथा क्षमादान के उपयुक्त हकदार (पात्र) हैं।

दूसरा यह कि – हममें से अधिकतर लोग हमेशा ही अपने किसी अपराधभाव विशेष का उल्लेख किये बिना ही ज्ञात-अज्ञात अपराधों के लिए लिए क्षमा की बात करते हैं। हम हमेशा ही अपने किसी विशेष अपराधभाव का उल्लेख करने से बचते हैं। **यह इस बात**

का द्योतक है कि हम जिस क्षमा की बात कर रहे हैं, हमारा वह क्षमाभाव वास्तविक नहीं है वरन् या तो वह मात्र एक औपचारिकता का निर्वाह है या एक बार फिर हमारी मायाचारी वृत्ति ही हमसे यह काम करवा रही है। यदि हम सचमुच क्षमाभावना से ओतप्रोत हैं तो हमें यह छल-कपट छोड़कर चित्त की सरलता के साथ अपने सभी **ज्ञात अपराधों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए उसके साथ ही अपने अज्ञात अपराधों के लिए भी क्षमायाचना करनी चाहिए।**

क्षमा मात्र उन्हीं अपराधों के लिए नहीं माँगी जानी चाहिए जो क्रियान्वित हो चुके हैं, **वरन् क्षमाभाव और क्षमायाचना दोनों ही अपने उन अपराधभावों के प्रति भी होनी चाहिए जो हमारे चित्त में उत्पन्न हुए हैं और अभी वहीं तक सीमित हैं, क्रियान्वित नहीं हुए हैं। जिनके बारे में अभी तक सामने वाले पक्ष को जानकारी तक नहीं है। हमारे ये अपराध हमें ज्ञात हैं और उन्हें अज्ञात। हमें इनका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।**

क्यों? क्योंकि **अपराध मात्र वह नहीं है जो बाहरी रूप से प्रकट हो चुका है, वह तो शरीर की क्रिया है। अपराध तो आत्मा का विकार है। एक बार आत्मा में अपराधभाव उत्पन्न हुआ तो हम तो अपराधी हो ही गए। बाहर आपराधिक क्रिया सम्पन्न हो या न हो।**

बाहरी क्रिया से हमारे परिणामों का अविनाभावी संबंध (एक के बिना दूसरे का ना होना) नहीं है। ऐसा नहीं है कि जो परिणाम हमारे चित्त में उत्पन्न हुए हैं वे क्रियान्वित हों ही हों और ऐसा भी नहीं है कि यदि अपराध बाह्य व्यवहार में क्रियान्वित नहीं हुआ तो अपराध ही न हुआ। यह तो स्थूलदृष्टि वालों की मान्यता है, क्योंकि अन्तरंग परिणाम तो उन्हें दिखाई देते नहीं हैं।

ऐसा भी संभव है कि बाह्य में कोई आपराधिक क्रिया सम्पन्न हो

जाए और हमारे चित्त में तत्संबंधी आपराधिकभाव ही न हों। सचमुच तो ये वह अपराध हैं जो अज्ञात अपराध की श्रेणी में आते हैं।

मुनिराज षट्काय के जीवों की रक्षा हेतु समस्त सावधानियाँ रखते हैं, इसके बावजूद यह संभव है कि सावधानियाँ रखने की उनकी सामर्थ्य के बाहर किसी जीव का घात हो ही जाये, पर वे अपराधी नहीं होते हैं क्योंकि न तो उनके चित्त में तत्संबंधी अपराधभाव है और न ही उनकी प्रवृत्ति में तत्संबंधी प्रमाद है।

चित्त में अपराधभाव न हो पर प्रवृत्ति प्रमादी हो तो वह भी हमें अपराधी तो बनाती ही है।

अपनी ओर से किसी के प्रति कोई भूल न होने देने की समस्त सावधानियों के बावजूद सम्पन्न होने वाले ऐसे क्रियाकलाप जो किसी के लिए अहितकर हैं, सचमुच तो अपराध की श्रेणी में नहीं आते हैं क्योंकि उनके पीछे कोई अपराधभाव नहीं है। यदि इन्हें भी हम अपराध की श्रेणी में रखेंगे तो वे मुनिराज भी अपराधी की श्रेणी में आ जायेंगे जिनके द्वारा समस्त सावधानियों के बावजूद भी किसी का कोई अहित हो गया हो।

यह अपराध की श्रेणी में शामिल नहीं होने के बावजूद, चूंकि किसी का अहित हुआ है, क्षमावाणी में उसके लिए भी क्षमायाचना की जाती है। मुनिराज भी प्रतिदिन इसके लिए प्रतिक्रमण करते हैं।

सच्चाई तो यह है कि हमारे लगभग सारे ही अपराधभाव तो हमारे अंतरंग तक ही सीमित रह जाते हैं, बाहर प्रकट होते ही नहीं। हमारे मात्र कुछ ही अपराधभाव सामने आते हैं क्योंकि **हम इतने कमजोर और अक्षम हैं कि न तो हममें उन्हें प्रकट करने का साहस है और न ही उन्हें क्रियान्वित करने की शक्ति और सामर्थ्य। हमारे अपराधभाव असीमित हैं, अनंत हैं,** हम तो सारे जगत को अपने इशारों पर नचाना

चाहते हैं, यह हमारा सारे जगत के प्रति शत्रुता का भाव ही तो है। पर हमारी शक्ति और उन्हें क्रियान्वित करने के हमारे साधन, हमारे पास उपलब्ध समय आदि सीमित है। **हमारे अपराध प्रकट नहीं हुए इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपराधी नहीं रहे।**

हम किसी का अहित करना चाहते हैं तो उनका अहित होने के लिए उनका भी तो तत्संबंधी पाप का उदय होना आवश्यक है ना! ऐसा तो है नहीं कि सबका उदय तेरे भावों के अनुकूल ही हो।

अपने मनोभावों को क्रियान्वित करने के लिए सिर्फ हमारी सामर्थ्य ही नहीं चाहिए वरन् अन्य द्रव्यों की भी तद्रूप (उस प्रकार) परिणामित होने की योग्यता होनी चाहिए। इस योग्यता में उस वस्तु के पाँचों समवाय गर्भित हैं।

यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि बाह्य में प्रकट हमारे अपराध तो हमारे चित्त में उत्पन्न अपराधभावों का एक नगण्य-सा हिस्सा ही हैं। इसलिए अपने अप्रकट अपराधों की आत्मस्वीकृति और उनके प्रति क्षमा का भाव ही सच्चा उत्तम क्षमा धर्म है।

यदि उक्त से भी एक कदम आगे बढ़ें तो तथ्य तो यह है कि अपने अंतर में, अपनी वृत्ति में पड़े अपराधभाव भी हमारे मूल अपराध के सामने नगण्य ही हैं। **मूल अपराध तो हमारे अंतर में पड़ा वह मिथ्यात्व है कि मैं परद्रव्यों का परिणमन अपनी इच्छा के अनुसार अपने अनुकूल करने में समर्थ हूँ। मेरी कर्त्ता-बुद्धि ही मेरा सबसे बड़ा अपराध है क्योंकि यह जगत के अनंत परपदार्थों की स्वतंत्रता का घात है। यह जगत के सभी पदार्थों को अपना गुलाम समझने या गुलाम बनाने की प्रवृत्ति है। अनंत पदार्थों के प्रति हमारा यह अनंत अपराध अनंतानुबंधी कषाय है जो सब अनर्थों का मूल है।**

●

12

क्षमा धर्म तो प्रतिपल धारण करने योग्य है, किसी एक दिन नहीं

यहाँ एक बात और विचारणीय एवं ध्यान देने योग्य है। **क्षमावाणी वर्ष में मात्र एक बार या तीन बार ही क्यों? प्रतिदिन और प्रतिपल क्यों नहीं?**

यदि क्षमाभाव धारण करना हमारे लिए हितकर है, सुख और शांति देने वाला है तो क्यों न सदा ही इसे धारण करें, इसे धारण करके लाभान्वित होने के लिए किसी एक दिन–विशेष का इन्तजार क्यों करें? क्या हमें प्रतिपल सुख और शांति नहीं चाहिए? यदि चाहिए और उसका साधन भी हमें ज्ञात है, ज्ञात ही नहीं सदा उपलब्ध भी है तो फिर इन्तजार किस बात का? क्यों नहीं हम हमेशा ही इसका उपयोग करके शान्ति धारण करते हैं?

इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि **शायद हमने आज तक सच्चे अर्थों में क्षमा धारण की ही नहीं। क्षमा धारण करने के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली शांति और निराकुलता का अनुभव किया ही नहीं। यदि हमने एक बार भी उस अलौकिक सुख–शांति का रसास्वादन किया होता तो हम क्षमा को अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाये बिना ना रहते। हम सदा अपने हृदय में क्षमाभाव धारण किये रहते। यदि हमारे हृदय में किसी के प्रति कोई अपराधभाव उत्पन्न होता या हमसे कोई अपराध बन पड़ता अथवा इसके उलट किसी के द्वारा हमारे प्रति कोई अपराध हो जाता तो तुरंत ही हम क्षमायाचना और क्षमाभाव धारण करके साम्यभाव धारण कर लेते।**

यहाँ कोई कह सकता है कि जिनवाणी में ही वर्ष में तीन बार, दशलक्षण धर्मों की आराधना के बाद क्षमावाणी मनाने का उल्लेख या निर्देश है। यहाँ मैं आपकी इस भ्रान्ति का निवारण करना चाहूँगा कि आपकी यह धारणा सही नहीं है। आगम में तो **वर्ष में कम–से कम एक बार या तीन बार क्षमावाणी की यह प्रक्रिया सम्पन्न करने का उल्लेख है।** अधिकतम सीमा का कोई उल्लेख नहीं है। अधिकतम तो आप इसे सदा धारण करें और सदा सुखी बने रहें – यही हमारे हित में है।

क्या आगम में प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने का निर्देश नहीं है, क्या हम प्रतिदिन जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्रदेव के समक्ष आलोचना पाठ नहीं करते हैं? क्या है आलोचना पाठ, यह अपने द्वारा हुए अपराधों की स्वीकृति व पश्चात्ताप ही तो है। तब हम यह कैसे मान बैठे हैं कि क्षमाभाव धारण करने का दिन क्षमावाणी साल में सिर्फ एक बार या तीन बार ही आता है?

मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ कि **क्या हमारे चित्त में धारण होने वाला क्षमाभाव किसी शुभ मुहूर्त का इन्तजार करता है, क्या धर्म किसी समय–विशेष से बँधकर होता है? यदि ऐसा हो तो जब हमारे चित्त में कोई अपराधभाव उत्पन्न होता है अथवा हमसे कोई अपराध ही बन पड़ता है तो उस अपराधबोध को मिटाकर निर्भार होने के लिए, निराकुल होने के लिए हमें साल–छह महीने का इन्तजार करना ही होगा, क्या हम इसके लिए मजबूर हैं? क्या धर्म ऐसी परतंत्रता का नाम है?**

क्या अपने जीवन में प्रकाश के लिए हमें सदा दिवाली का इन्तजार करना होगा, क्या हम जिस दिन और जिस पल दीपक जलाएँगे उसी पल हमारा जीवन उजियारा नहीं हो जाएगा? क्या साधनसम्पन्न लोगों का प्रतिदिन दिवाली के ही समान आलोकित नहीं होता है?

इसी प्रकार धर्म-सम्पन्न लोगों का तो प्रतिपल ही क्षमावाणी है।

मैं एक बार फिर कहना चाहता हूँ कि धर्म एक स्वतंत्र प्रक्रिया है, यह पराधीन नहीं है। हम जीव द्रव्य और जीव तत्त्व हैं। जीव धर्म-धारण करने के लिए काल द्रव्य के परिणमन का मोहताज नहीं है।

ज़रा विचार तो करिये! **हम भयावह, मरणांतक वेदना से पीड़ित हों और उस पीड़ा को पलभर में हर लेने वाली रामबाण औषधि हमारी जेब में ही रखी हो तो हम उस औषधि का सेवन करने में कितनी देर करेंगे?**

सफल और समझदार व्यापारी अपनी आज की रोकड़-बही आज ही बंद (account tally) करके घर जाते हैं, वे हिसाब मिलाने के लिए दिवाली तक का इंतज़ार नहीं करते हैं। तब हम क्यों अपने अपराधभावों का अकाउंट क्षमावाणी के दिन तक ओपन रखें?

कौन जाने हमारे जीवन में अब एक और क्षमावाणी का दिन आएगा भी या नहीं। यदि कदाचित् नहीं आया तो क्या हम सभी के प्रति अपराध-बोध और वैरभाव लेकर ही अगला भव धारण करेंगे? क्या हम अपनी इस मनुष्य पर्याय से निर्भार होकर नहीं जाना चाहते हैं?

एक बात और! तेरे चित्त में तेरे द्वारा किसी के प्रति हुए अपराध का पश्चात्ताप है और तू उससे मिलकर अपने उस अपराध के लिए खेद व्यक्त करना चाहता है, यह संकल्प व्यक्त करना चाहता है कि अब आगे कभी भी इस प्रकार का व्यवहार नहीं होगा। पर संयोगवश तुझे इसका उपयुक्त अवसर ही नहीं मिला। इसी बीच सामने वाले को अवसर मिल गया और वह तेरे द्वारा हुए उसके

अहित का बदला लेने के उदेश्य से तेरा कोई बड़ा नुकसान कर बैठा; अब तू ही बता कि तेरे इस अहित का जिम्मेदार कौन है, क्या तू स्वयं नहीं? यदि, जैसे ही तुझे अपनी भूल का अहसास हुआ था, तू पीड़ित पक्ष से क्षमायाचना करके इस प्रकरण को समाप्त कर लेता तो क्या आज हुए अपने इस अहित से बच नहीं जाता? आखिर इस विलम्ब से लाभ क्या है?

रावण को अपनी भूल का अहसास हो गया था और वह अपनी भूल सुधारना भी चाहता था। यह तो स्थापित तथ्य है ही कि उसने माता सीता का स्पर्श तक नहीं किया था। वह उन्हें ससम्मान अयोध्या भेजना चाहता था, पर मजबूर होकर नहीं, विजयी होकर। बस इसी भावना के वशीभूत होकर वह अपनी भूल को सुधारने का अवसर खो बैठा। फिर जो हुआ हम सभी जानते हैं। यदि अपनी भूल का अहसास होते ही वह अपनी भूल सुधार लेता तो आज इतिहास कुछ और ही होता।

क्या कभी ऐसा होता है, क्या यह उचित है, क्या यह बुद्धिमत्ता है कि हमारी तिजोरी में करोड़ों रुपये बिना उपयोग रखे हुए हैं और हम कुछ लाख रुपयों के कर्जदार बने रहें, उनका ब्याज चुकाते रहें? क्या यही उपयुक्त नहीं है कि हम अपना कर्ज चुकाकर कर्ज मुक्त हो जाएँ और चैन की नींद सोयें? ठीक इसी तरह त्रिकाल क्षमा का भण्डार हमारा यह भगवानआत्मा क्यों कुछ पलों के लिए भी किसी अपराध-बोध का शिकार बनकर रहे। क्यों नहीं तत्क्षण अपने अपराधों की स्वीकृतिपूर्वक क्षमायाचना कर व क्षमाभाव धारण करके अपने अपराधबोध के बोझ से मुक्त होकर हम सुख से रहें?

क्या हम अपने घर का कचरा प्रतिदिन ही निकाल कर अपने घर को सदा साफ़-सुथरा नहीं रखते हैं, क्या घर की सफाई के लिए हम सदा दिवाली आने तक का इन्तजार करते हैं? नहीं न! जब हम स्नान करके प्रतिदिन तन के मैल का निवारण करते हैं तो मन के मैल के निवारण के लिए एक वर्ष तक इंतजार क्यों करें?

मिष्ठान्न भोजन के सेवन के लिए दिवाली-होली का इन्तजार तो दरिद्र लोग करते हैं, साधन-सम्पन्न लोग तो सदा, जब भी चाहें षट्रस व्यंजन का सेवन करते हैं, उनके लिए क्या दिवाली और क्या होली? अरे जिनके पास खानपान की पर्याप्त सामग्री हो, क्या वे भूख-प्यास लगने पर भोजन और पानी के सेवन के लिए कल तक का इन्तजार करेंगे या जब, जिस पल उन्हें भूख और प्यास का वेदन होगा, तत्क्षण वे भोजन और जल का सेवन कर लेंगे? इसी प्रकार **धर्म-सम्पन्न धर्मात्मा लोग तो सदा क्षमा आदि धर्म धारण करते हैं, इसके लिए कल का अथवा दशलक्षण महापर्व या ऐसे ही अन्य अवसरों की राह नहीं देखते हैं। धर्म धारण करने के लिए किसी पर्व का इन्तजार तो धर्म के दरिद्र लोग करते हैं। किसी वस्तु के लिए तरसते हुए वक्त काटना तो अभावों और दरिद्रता की निशानी है, सम्पन्नता और वैभव की नहीं।** अब निर्णय हमें करना है कि हमें धर्म-धारण करने के विषय में दरिद्री ही बने रहना है या धर्म-सम्पन्न बनना है।

कदाचित् हम आज आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं हैं तो प्रतिदिन धन कमाने का उपक्रम करते हैं, न कि धन कमाने के लिए किसी विशेष अवसर का इन्तजार करते हैं। इसी प्रकार यदि हम आज धर्म-सम्पन्न धर्मात्मा नहीं हैं तो क्या धर्म-धारण करने के लिए

किसी विशेष अवसर का इन्तजार करना योग्य है, क्या हमें प्रतिपल ही निरंतर इस दिशा में सक्रियतापूर्वक प्रयत्नशील नहीं रहना चाहिए?

वे लोग जो धर्मधारण करने के लिए किसी अवसर का इन्तजार करते हैं, सच कहा जाए तो उन्हें धर्म-परिणति प्रकट ही नहीं हुई है। वे तो तथाकथित धर्म का लबादा ओढ़ने की योजना बना रहे हैं। **जिसकी परिणति धर्ममय हो गई है वह तो तत्क्षण धर्मात्मा हो ही गया है, अब वह किस दिन का इन्तजार करे और क्यों?**

यदि हमें धर्म-सम्पन्न बनना है तब क्यों नहीं हम सदा के लिए अपने चित्त में क्षमा धारण करते हैं?

●

कभी-कभी सोचता हूँ कि "काश! जीवन दो बार जीने को मिलता; एक बार सीखने के लिए, अनुभव लेने के लिए, ट्रायल करने के लिए व फिर दूसरी बार पूरी तरह जीने के लिए" पर यह तो कल्पनालोक की उड़ान है। यथार्थ जीवन में तो यह सम्भव नहीं है।

–अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-(vii)

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

शिल्प में जो कुछ भी अभिव्यक्त होता है, वह शिल्पी का अपना दृष्टिकोण होता है, उसकी अपनी परिकल्पना होती है। हमें अपने-आपको जिस रूप में ढालना है, वह किसी अन्य की परिकल्पना नहीं, वरन् हमारा अपना स्वप्न है, हमारा अपना स्वप्न होना चाहिए और इसलिए हमें अपना शिल्पी स्वयं ही बनना होगा। –अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-(x)

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

अरे कितने अज्ञ हैं हम! हम स्वयं अपने-आपको नहीं जानते, हम स्वयं अपने मनोभावों का विश्लेषण नहीं कर पाते हैं। हम क्या हैं और अपने-आपको क्या समझते हैं। स्वयं हमारी निगाहों से ओझल, हमारे अन्दर छुपी हुई हमारी अपनी हीन वृत्तियाँ किसप्रकार समाज के वातावरण को विषाक्त किया करती हैं, इसकी हमें कल्पना ही नहीं रहती है।

–अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-12

13

क्या I am sorry बोलना क्षमावाणी है?

यदि हम लौकिक व्यवहार का ही उदाहरण लें तो हम पाते हैं कि **आज की विकसित पाश्चात्य सभ्यताओं में लोगों ने अपने अनुचित (improper) और अनुपयुक्त से दिखाई देने वाले (inappropriate) व्यवहार के प्रति तत्काल खेद (apologize) व्यक्त करने की प्रक्रिया को अपने जीवन का आवश्यक अंग बना लिया है।** जैसे ही वे महसूस करते हैं कि उनसे कोई ऐसा व्यवहार बन पड़ा है जिससे किसी को कोई असुविधा हो सकती है अथवा जो किसी को एतराज (objection) करने का कारण बन सकता है तो वे स्वत: ही तुरंत अपने उक्त अनुपयुक्त व्यवहार के लिए sorry बोलकर खेद व्यक्त कर देते हैं। ऐसा करने में वे न तो कभी मीनमेख करते हैं और न ही कोई तर्क-वितर्क। वे अपने किसी आचरण को सही साबित करने का व्यर्थ प्रयत्न नहीं करते हैं। sorry बोलते हुए वे हम लोगों की तरह न तो कोई शर्म महसूस करते हैं और न ही हीनता (inferiority)।

आखिर ऐसा हो भी क्यों? हम सभी जानते हैं कि हम सभी कमजोर और आधे-अधूरे प्राणी हैं, हमारी क्षमताएँ सीमित हैं इसलिए हमसे भूलें हो जाना स्वाभाविक ही है। ऐसा सिर्फ हमारे साथ ही थोड़ी होता है, भूलें सभी से होती हैं और सभी sorry बोलते हैं, यह एक सामान्य प्रक्रिया है।

और तो और, जब वे यह महसूस करते हैं कि अब वे जो बात कहने जा रहे हैं अथवा आचरण करने जा रहे हैं वह किसी के लिए

आपत्तिजनक हो सकता है, पर ऐसा करना आवश्यक भी है तो वे अपनी बात शुरू करने से पहले ही excuse me कहकर अपनी हिचक और अफ़सोस व्यक्त कर देते हैं। ऐसे में उनके कार्यों का अनुमानित दुष्प्रभाव स्वतः ही कम हो जाता है।

इन लोगों का यह व्यवहार दिन-प्रतिदिन के सामान्य व्यवहार को गरिमामय बनाये रखने के लिए तो बहुत अच्छा है और यह आवश्यक तथा उपयोगी भी है, यह भी हमारे जीवन का अंग होना ही चाहिए, पर यह क्षमाभाव और क्षमावाणी की पूर्ति नहीं करता है, क्योंकि इसमें वह क्षमाधर्म वाले क्षमाभाव की अभिव्यक्ति नहीं है। अधिकतर मामलों में तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह excuse me और sorry शब्द तकियाकलाम बनकर उनकी भाषा में शामिल हो गए हैं। ऐसा बोलते हुए उन्हें यह अहसास तक नहीं होता है कि उन्होंने किसी से क्षमा माँगी है अथवा खेद व्यक्त किया है। इस प्रकार इसमें वह गहराई नहीं है जो कषाय की मंदता के फलस्वरूप प्रकट हुए क्षमाभाव में है।

मेरे उक्त कथन की पुष्टि इस तथ्य से बड़ी आसानी से होती है - **यदि किसी से कहा जाए कि सॉरी बोलो तो वह आसानी से, बेहिचक तुरंत सॉरी बोल देता है पर यदि उसी से कहा जाए कि माफी माँगो तो वह आनाकानी करने लगता है, शर्तें लगाने लगता है। हमारा यही व्यवहार यह दर्शाता है कि हम सॉरी को अपनी गलती स्वीकारना और उसके पश्चात्ताप रूप क्षमा माँगना नहीं मानते हैं।**

Sorry बोलते हुए बोलने वाले का ऐसा कोई अभिप्राय या संकल्प व्यक्त नहीं होता है कि 'ऐसा फिर नहीं होगा' और excuse me कहते हुए तो बोलने वाले का यह इरादा स्पष्ट ही प्रकट होता है

कि अब वह कोई ऐसी बात कहने जा रहा है अथवा ऐसा व्यवहार करने जा रहा है जो वह जानता भी है कि शायद आपको नागवार गुजरे। वह जानबूझकर आपको नापसंद बात कहने अथवा क्रियाकलाप करने जा रहा है।

उक्त के विपरीत क्षमाभाव में वही अपराध फिर से न दोहराने का संकल्प अंतर्निहित है। दोनों के बीच अंतर हम इन शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं – **हम कह सकते हैं कि क्षमाभाव धर्म है और सिर्फ ऊपरी तौर पर खेद (apologize) व्यक्त करना सभ्यता है, एक रणनीति है।**

अन्य जीवों के अपराधों के प्रति साम्यभाव धारण करके उन्हें क्षमा और अभय प्रदान करना तथा अन्य जीवों के प्रति हमसे हुए ज्ञात अपराधों के उल्लेखपूर्वक एवं अज्ञात अपराधों के लिए क्षमायाचना करना एक जैन श्रावक के जीवन का अनिवार्य अंग है।

यहाँ यह बात स्पष्ट है कि हमारा क्षमादान और क्षमायाचना सुविचारित और अन्तरंग की गहराइयों से होनी चाहिए। ऐसा करते हुए हम क्षमामय हो जाने चाहिए। यह मात्र कोई औपचारिकता तक सीमित नहीं रहना चाहिए।

साथ ही क्षमायाचना करते हुए हमारे चित्त में यह संकल्प होना चाहिए कि यथासंभव अब भविष्य में इस प्रकार के अपराध की पुनरावृत्ति नहीं होगी।

यह क्षमादान और क्षमायाचना इस बात से निरपेक्ष होनी चाहिए कि सामने वाला हमसे क्षमा माँगता है या नहीं अथवा हमें क्षमा करने को तैयार है या नहीं।

हमारे अंतर का यह क्षमाभाव मिथ्यादृष्टि जीवों, अव्रती सम्यग्दृष्टि जीवों, अणुव्रतियों और महाव्रती संतों में उत्तरोतर बढ़ता हुआ अरिहंत और सिद्ध दशा में पूर्णता को प्राप्त होता है। यह उत्तम क्षमा धर्म की पराकाष्ठा है।

इसके वृद्धिंगत होने का सीधा संबंध जीव के अन्तरंग में अपनी भूमिका (गुणस्थान) के अनुरूप कषायों के अभावरूप और तद्‌जनित वीतरागता रूप शुद्धि की वृद्धि से है। यही वजह है कि प्रत्येक गुणस्थान में उत्तरोत्तर क्षमाभाव और क्षमायाचना रूप क्रियाओं की आवृत्ति (frequency) और उनका स्वरूप बदलता जाता है।

मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के बीच आपसी व्यवहार में वाचिक क्षमा याचना का व्यवहार अधिक होता है और उसमें आंतरिक गहराई कम होती है। उत्तरोत्तर ऊँचे गुणस्थानों में बाह्य व्यवहार सीमित होता जाता है और आंतरिक गहराई बढ़ती जाती है।

इसप्रकार हम पाते हैं कि जहाँ sorry बोलने का व्यवहार मात्र मनुष्यों के बीच आपसी व्यवहार की शैली का एक उथला-सा (superficial) औपचारिक अंग मात्र है, यह जीवन जीने की एक कला है। इसमें गहराई नहीं है। वहीं दूसरी ओर **जैन दर्शन का क्षमा धर्म मात्र मनुष्यों के बीच नहीं वरन् जगत के प्राणिमात्र के बीच संचालित होने वाला एक व्यवस्थित विज्ञान है जो आत्मा के अन्तरंग परिणामों से सम्बद्ध है, मात्र शारीरिक क्रियाकलापों से नहीं। इसमें उत्तरोत्तर विकास है जो अंततः पराकाष्ठा पर पहुँच कर पूर्णता को प्राप्त होता है।** ●

(14)

सशर्त क्षमायाचना क्षमा नहीं

हमारा अन्यों के प्रति क्षमाभाव और उनसे हमारी क्षमायाचना सदा शर्तविहीन और उनके प्रतिसाद (response) से निरपेक्ष एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर भाव तथा क्रियाकलाप होना चाहिए। अंतरंग कषायों की मंदता के फलस्वरूप उपजे क्षमाभाव में न तो कोई शर्त होती है और न ही सामने वाले से किसी अनुकूल प्रतिक्रिया की अपेक्षा, यह तो स्वयं के परिणामों की विशुद्धि की प्रक्रिया है। इसमें शर्तें कैसी ?

जैसाकि हम अपनी चर्चा में विस्तारपूर्वक यह स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्य जीवों के प्रति क्षमाभाव धारण करना और अपने लिए क्षमायाचना करना, ये दोनों ही व्यापक रूप से हमारे अपने हित में हैं तो इसमें हिचक क्यों, इसमें शर्तें कैसी ?

यदि हम शर्तों पर क्षमा धारण करना चाहते हैं तो यह एक पराधीन क्रिया हो गई। यदि सामने वाला पक्ष हमारी शर्तों को स्वीकार न करे तो क्या हम क्षमा धारण ही नहीं करेंगे ? तब हमारी निराकुलता और निर्भयता का क्या होगा ?

सब जीवों की परिणति स्वतंत्र और पृथक्-पृथक् है, कहा भी है न कि – ''मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना''। जब दोनों एक दूसरे से अलग-अलग मानसिक धरातल पर खड़े हैं तो ऐसे में यह कैसे संभव है कि सामने वाला पक्ष भी आपकी शर्तों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेगा। ऐसे में यह सशर्त क्षमाभाव कैसे संभव होगा, कैसे सम्पन्न हो सकेगा।

शर्तविहीन क्षमाभाव तो जगत के अनंत जीवों के साथ एक साथ संभव है पर यदि शर्तें तय करनी हैं और उनमें मोलभाव (negotiation)

करना है तो अलग–अलग परिस्थितिओं और मान्यताओं के अनंत जीवों के साथ यह सब कैसे संभव है ?

स्पष्ट है कि क्षमाधर्म और क्षमाभाव में शर्तें संभव नहीं, यह तो बिना शर्त ही होता है।

भाई! यदि हम उपरोक्त उपयुक्त प्रक्रिया का अनुशरण नहीं करते हैं, अर्थात् यदि हम क्षमा माँगने अथवा क्षमा करने के लिए कोई शर्त लगाते हैं और सामने वाले से अनुकूल प्रतिक्रया की अपेक्षा करते हैं तो बिना किसी शको–सुबहा के यह बात अच्छी तरह समझ लेना कि **यह हमारी वृत्ति का मायाचार ही है और कुछ नहीं।** मायाचार इस मायने में कि हम क्षमाभाव के भाव को सही अर्थों में न समझकर, न ग्रहण कर, न व्यवहार में लाकर उसमें अपनी सुविधा के अनुसार तोड़–मरोड़ कर रहे हैं। इसके मायने स्पष्ट हैं कि **इस प्रकार की हमारी क्षमावाणी मात्र परम्परा के निर्वाह की औपचारिकता मात्र है, इससे अधिक और कुछ नहीं।**

अरे! **इससे अधिक और कुछ कैसे नहीं? जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि यह हमारे अंतर में विद्यमान मायाचार का प्रदर्शन है, जिसे आजकल की भाषा में सभ्यता कहा जाता है।**

हमें अपनी अंतरंग परिणति पर एक सजग, पैनी और कठोर निगाह रखनी चाहिए कि कहीं हम तथ्यों को जान–बूझकर या अनजाने ही अपनी सुविधानुसार या अपने पूर्वाग्रह के अनुसार तोड़–मरोड़ तो नहीं रहे हैं, कहीं अर्थ का अनर्थ तो नहीं कर रहे हैं, कहीं आधा–अधूरा तो ग्रहण नहीं कर रहे हैं। यदि ऐसा होता है तो हम अपने–आपको धर्म का साधक, धर्मात्मा होने का भ्रम तो पाल बैठेंगे पर ऐसा करने से धर्म साधन से होने वाले साध्य की सिद्धि नहीं होगी। हम अपनी मान्यता के अनुसार वर्षों से धर्मात्मा हैं, धर्म साधन कर रहे हैं पर उसका सही परिणाम इसीलिये सामने नहीं आता है।

●

(15)

‘जहाँ तक मैं समझता हूँ’ धर्म नहीं है!

विडंबना है कि हम धर्म का उपदेश उनसे सुनते हैं जो कहते हैं कि – ‘‘**जहाँ तक मैं समझता हूँ .... यही धर्म है**’’ उसके बाद हम वह धर्म करते हैं ‘‘**जहाँ तक हम स्वयं समझते हैं।**’’ **अरे भोले! धर्म वह नहीं है जहाँ तक, जो कुछ हम समझते हैं। धर्म वस्तु का स्वरूप है, धर्म वस्तु का वह स्वरूप है जो वीतरागी–सर्वज्ञदेव ने प्रतिपादित किया है। हमें वह समझना होगा जो धर्म है।**

क्या कोई कभी यह मानकर कि ‘जहाँ तक मैं समझता हूँ यह जहर नहीं है’ किसी पदार्थ का सेवन करता है? अथवा धधकती आग में हाथ डालता है कि ‘जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह जलायेगी नहीं।’

क्या आप ऐसे किसी सर्जन से अपने हार्ट का ऑपरेशन करवायेंगे, जो कहे कि – ‘‘जहाँ तक मैं समझता हूँ, मुझे ऐसा करना चाहिए।’’ यद्यपि यहाँ तो हम उस सर्जन की समझ से ही ऑपरेशन कराने आये हैं, पर ‘जहाँ तक मैं समझता हूँ’ वाक्य में अपने ही कथन और मान्यता के प्रति उसके आत्मविश्वास की कमी प्रतीत होती है। हमें ऐसी राय नहीं चाहिए। हमें उनके आत्मविश्वास से भरपूर वह निर्णय चाहिए जो संदेह से परे हो।

जब एक छोटे से काम में हम इतने सजग रहते हैं तो इस मोक्षमार्ग के विषय में ही क्यों हमारी बुद्धि पर पत्थर पड़ जाते हैं?

यदि आत्मकल्याण करना है, मोक्ष जाना है तो ‘जहाँ तक हम समझते हैं’ से काम नहीं चलेगा, वह समझना होगा जो सर्वज्ञदेव ने बताया है।

यदि हमें कार्यकारी (effective) धर्म चाहिए जो आत्मकल्याण और शाश्वत परम सुख पाने के अपने लक्ष्य की सिद्धि कर सके तो 99% दक्षता (perfection) से काम नहीं चलेगा, इसमें शत-प्रतिशत दक्षता चाहिए। इसमें 99% means fail है, इसकी वैल्यू शून्य है।

जिस प्रकार स्पेस-मिशन की सफलता के लिए सिर्फ शत-प्रतिशत दक्षता (perfection) चाहिए, 1% की भूल से पूरा मिशन फेल हो जाता है। इस प्रकार 99% परफेक्शन की कीमत शून्य नहीं बल्कि माइनस में है, क्योंकि उस 1% की भूल के कारण सैकड़ों वैज्ञानिकों का वर्षों का श्रम और देश के करोड़ों रुपये नष्ट हो जाते हैं। उनका आत्मविश्वास टूट जाता है। इसी प्रकार आत्मकल्याण करने, शाश्वत सुख पाने और मोक्ष जाने के लिए सौ प्रतिशत दक्षता चाहिए, 99% वाले अनंत संसार में भटकते हैं।

मुझे समझ में नहीं आता है कि दुनियादारी में इतने पूर्णतावादी (perfectionist) हम लोग जहाँ भोजन में 1 मिलीग्राम नमक कम या ज्यादा न हो जाए इस बात की सावधानी रखने वाले लोग, करोड़ों के लेन-देन में भी cash book balance में 1 रुपये का फर्क आने पर उसके मिल जाने (tally हो जाने) तक घर न लौटने वाले लोग, क्रिकेट मैच में 1 मिलीमीटर और सेकण्ड के 100 वें हिस्से के फर्क पर निगाह रखने वाले लोग, मानव शरीर में विद्यमान लाखों प्रकार के पदार्थों का माइक्रो मिलीग्राम और 1 प्रतिशत के हजारवें हिस्से तक की गणना करके निष्कर्ष निकालने वाले हम ही लोग धर्म और आत्मा के मामले में इतने casual क्यों हो जाते हैं?

जैसे उक्त सभी के बिना लौकिक कार्य सफल नहीं हो सकते हैं उसी प्रकार ऐसी ही सूक्ष्मता और प्रामाणिकता के बिना धर्म भी कार्यकारी नहीं हो सकता है।

●

(16)

धर्म स्वाधीन है, यह शर्तों पर नहीं होता है

हमारी मूल चर्चा तो यह चल रही थी कि धर्म-धारण करने की प्रक्रिया किसी पर-पदार्थ पर आश्रित नहीं है। क्षमाधर्म भी इसका अपवाद नहीं है।

अरे! अन्यों की तो बात ही क्या, धर्म तो इस देह (नोकर्म) के आधीन भी नहीं है। **देह के आधीन क्रियाओं को धर्म मानने का मतलब है धर्म-धारण करने के लिए देह का गुलाम होना।**

ज़रा विचार तो कीजिये कि **यदि देह साथ न दे तो क्या हम धर्मात्मा ही न हो सकेंगे, धर्म धारण ही न कर सकेंगे ?** यदि मुँह से क्षमा माँगने या क्षमा करने को बोल ही न फूटें, कोई गूँगा हो तो क्या वह क्षमाधर्म का धारी ही न हो सकेगा, तब पशुओं का क्या होगा ?

अरे! देह (नोकर्म) तो क्या, धर्म तो कर्म के उदय के आधीन भी नहीं है, तू तो आत्मा का आश्रय ले, वे (कर्म) स्वमेव ही चंपत हो जायेंगे। कर्म भी तुझ पर तब तक ही शासन करेंगे जब तक तू उनकी ओर निहारेगा। यदि सबकुछ कर्म के आधीन ही हो, कर्मोदय से ही नियंत्रित हो तो कभी मोक्ष होगा ही नहीं, तब तो कर्मोदय के परिणाम में उलझ कर फिर नए कर्म बँधेंगे, और यह सिलसिला अनवरत चलता ही रहेगा।

डॉ. भारिल्ल कहते हैं -

कर्मबन्धन काटने को कर्म ही करते रहे।
कर्म ही करते रहे तो कर्म ही बँधते रहे।।

इस बात की गाँठ बाँध लीजिये कि जहाँ पराश्रय (dependence on others) दिखाई दे, जिसके लिए पर (जगत के सभी चेतन-अचेतन द्रव्य) के सहयोग की आवश्यकता हो, जो पर के सहयोग के

बिना न हो सके वह धर्म है ही नहीं, हो ही नहीं सकता।

धर्म का पात्र स्वतंत्र है, धर्म की विधि और धर्म की क्रिया स्वतन्त्र है और धर्म का परिणाम स्वतंत्रता है।

यहाँ आपको लग सकता है कि आपका कथन विरोधाभासी है, यदि धर्म का पात्र स्वतंत्र ही है तो यह कहना बेमानी है कि धर्म का परिणाम स्वतंत्रता है। यदि स्वतंत्र है ही तो स्वतंत्र होना किसे है?

अरे भाई! श्रद्धा में स्वतंत्रता की स्वीकृति ही स्वतंत्रता है और इसका परिणाम है जगत से और कर्म बंधन से मुक्ति। वर्तमान में कर्म बंधन में बँधा जीव जब ज्ञान में अपनी स्वतंत्रता का निर्णय करता है तब श्रद्धा गुण अपने-आपको (आत्मा को) स्वतंत्र स्वीकार करता है। ऐसा होने पर कर्मों की निर्जरा होती है और यह जीव कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है।

दूसरी बात – "**धर्म शर्तों पर नहीं होता।**"

"**वत्थु सहावो धम्मो**" **धर्म वस्तु का स्वभाव है और स्वभाव में शर्तें नहीं होतीं, स्वभाव सशर्त नहीं होता, धर्म तो क्षेत्र और काल से भी निरपेक्ष होता है। धर्म धारण के लिए किसी विशिष्ट क्षेत्र और काल की अपेक्षा नहीं है। धर्म किसी क्षेत्र-विशेष में अथवा किसी काल-विशेष में नहीं बसता है, आत्मा का धर्म आत्मा में है।**

धर्म स्वतंत्रता का नाम है और शर्तें स्वतंत्रता का हनन करती हैं, इसलिए धर्म सशर्त हो ही नहीं सकता है। जहाँ तुझ पर शर्तें लादने की कोशिश हो, समझ लेना वहाँ धर्म नहीं है। **यह भी धर्म को परखने और पहचानने की एक कसौटी है।**

जहाँ कहा जाए कि ऐसा करो, ऐसा करना चाहिए, इसके बिना यह नहीं हो सकता है, वहाँ उनका तात्पर्य यह होता है कि 'इस अवस्था में ऐसा होता है।' हमारी भूल यह होती है कि **कर्त्ता-बुद्धि**

वाले कर्त्तापन के अभिमान से दग्ध हम लोगों की समझ में 'होना' आता ही नहीं। हमें लगता है कि यदि सबकुछ स्वत: होता रहेगा तो हम क्या करेंगे। अरे भोले! तू यह क्यों नहीं समझता है कि सब स्वत: होना ही तेरा कृत्य है।

जगत का ही उदाहरण लें तो विचार करिए कि जहाँ जो व्यवस्थाएँ स्वचालित (automatic) हैं क्या वहाँ हमारा कोई कर्तृत्व नहीं है? अरे! हमने उस स्वचालित व्यवस्था को स्थापित किया, स्वीकार किया, यही यहाँ हमारा कर्तृत्व है। हम उसमें अपनी दखलंदाजी नहीं करते (टाँग नहीं अड़ाते) हैं। यही हमारा उस व्यवस्था में सहयोग है।

हमारी वृत्ति तो यह है कि हमें तो कुछ न कुछ करने को चाहिए। **'करना पड़ेगा' में शर्त है, पराधीनता है, आकुलता है, ये सब धर्म नहीं हो सकता है। 'होता है' में सहजता है, वस्तुस्वरूप की स्वीकृति है, निराकुलता है, यह धर्म है।**

परिणमन वही है, फर्क है सिर्फ मान्यता का, कर्त्ताबुद्धि और वस्तु के परिणमन की स्वतंत्रता का।

राई की ओट में पहाड़ है। ऊपरी तौर पर देखने में लगता है कि सबकुछ तो वही है, सबकुछ तो समान है। एक ही तो बात है कि – **पंचम-गुणस्थान में अणुव्रत होते हैं।** इसी बात को कोई कहता है कि पंचम-गुणस्थानवर्ती जीव को अणुव्रत पालने पड़ते हैं और कोई कहता है कि जहाँ आचरण में अणुव्रतों का सद्भाव हो वह पंचम-गुणस्थान होता है। क्या आपको दोनों ही कथन एक जैसे दिखाई देते हैं?

'वह मर गया' और 'उसे मार डाला गया' क्या आपको ये दोनों कथन एक से दिखाई देते हैं, इनमें कोई फर्क समझ नहीं आता है। कर्म एक है, निष्कर्ष एक है कि वह मर गया है पर **एक में स्वतंत्र और स्वाभाविक परिणमन है, यह निरपराध-दशा है और दूसरे में पराश्रय है, कर्त्तापना है, अपराध है।**

अणुव्रतों की अवस्था में दिखाई देने वाला बाह्य आचरण एक जैसा होने पर भी **एक जगह कर्त्तापना है, वस्तु के स्वतंत्र परिणमन की अस्वीकृति है, करने की अनंत आकुलता है। यह मिथ्यात्व है, अधर्म है। दूसरी ओर कण–कण की स्वतंत्रता और स्वतंत्र परिणमन की स्वीकृति है, निराकुलता है, यह धर्म है।**

यदि प्रयत्नपूर्वक बदलने का प्रयास न किया जाए तो किसी भी जीव का स्वाभाविक बाह्य आचरण उसकी अंतरंग परिणति का प्रतिबिंब होता है। अगर हमें अपने बाह्य आचरण में परिवर्तन लाना है तो परिवर्तन अंतरंग परिणति में होना चाहिए न कि मात्र बाहरी प्रदर्शन में। **अंतरंग परिणति में विशुद्धि हुए बिना बाह्य में अपनी वर्तमान भूमिका से उच्च स्तर का व्यवहार प्रदर्शन कष्टसाध्य और आकुलता का कारण है।**

जिस प्रकार अंतरंग में रोग होने पर बाह्य में बुखार और बदन दर्द की पीड़ा प्रकट होती है। ऐसे में मात्र दर्दनाशक दवा लेकर बाह्य में दर्द कम कर लेना और बुखार उतार लेना मर्ज का इलाज नहीं है। उचित तो यह है कि सही कारण को पहचान कर उसका उपचार किया जाए। जब कारण दूर हो जाएगा तो बाह्य दर्द और ज्वर स्वत: दूर हो जाएगा।

प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है। हमारे चित्त में क्षमा प्रकट हुई है तो आवश्यक नहीं कि ऐसा सबके साथ हो, उनके हृदय में भी क्षमा प्रकट हुई हो जिन्हें हम क्षमा कर रहे हैं अथवा जिनसे हम क्षमाप्रार्थी हैं। हमने तो अपने चित्त में सभी के प्रति क्षमाभाव धारण कर लिया, पर अन्य जीवों की परिणति तो स्वतंत्र है ना! उनके चित्त में तो अभी भी हमारे प्रति क्रोध और वैर का भाव पल ही रहा है न! अभी उनकी कषायें तो मंद हुई नहीं हैं। ऐसे में स्वाभाविक ही है कि हमें उनकी ओर से वैसा प्रतिसाद (response) न भी मिले जैसा हम चाहते हैं।

उनका भाव न बदले तो ना सही, हमें स्वयं धर्मात्मा होने के लिए उनके सहयोग की आवश्यकता नहीं है। **धर्म का मार्ग तो 'एकला चलो' का पंथ है। साथ की भावना तो संसार की भावना है।**

हम अपने चित्त की सरलता के साथ, अपने अपराधों की स्वीकृतिपूर्वक यदि किसी से अपने अपराधों के प्रति खेद व्यक्त करें और उनसे क्षमायाचना करें एवं यही सब कुछ हमारे आचरण-व्यवहार और भाव-भंगिमा में भी दिखाई दे तो स्वाभाविक ही है कि उनके चित्त में भी हमारे प्रति कोमल भाव उदित हो जाएँ और वे हमारा अनिष्ट करने का संकल्प और प्रयत्न छोड़ दें। इस प्रकार हम उनके भय से मुक्त हो जाएँ।

यहाँ एक बार फिर यह बात याद दिलाना जरूरी समझता हूँ कि हमें क्षमाधर्मधारी धर्मात्मा होने के लिये यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि हमारे क्षमायाचना करने पर सामने वाला हमें क्षमा करे ही करे।

एक बात और, **कोई हमें क्षमा करे या न करे। क्षमा माँग कर हम तो अपने अपराधबोध से मुक्ति पा ही लेते हैं ना!** यह उपलब्धि भी क्या कम है? अपराधबोध भी क्या कम यातनापूर्ण और खतरनाक होता है? कुछ कमजोर लोग तो इस अपराधबोध के दबाव को सहन ही नहीं कर पाते हैं और इतने व्याकुल हो उठते हैं कि आत्मघात तक कर लेते हैं।

महत्त्वपूर्ण क्या है, सामने वाले का हमारे प्रति व्यवहार या हमारी स्वयं की मनस्थिति? हमने अपने अपराधबोध को त्यागकर, सबसे क्षमायाचना कर ली और सभी को अपनी ओर से क्षमा कर दिया तो हम तो निर्भय और निर्भार हो गए, उसका परिणमन उसके अधीन रहा।

●

17

मात्र क्रोध की मंदता या अभाव का नाम क्षमा नहीं, क्षमा में चारों कषायों की मंदता और अभाव गर्भित है

अन्य जीवों के प्रति अपने चित्त में स्थित वैरभाव का त्याग करके, उन्हें क्षमा करके हम अपनी क्रोध–कषाय को शांत करते हैं और अन्य जीवों से क्षमा माँग कर हम अपनी मान–कषाय को शांत करते हैं। इस प्रकार ऊपरी तौर पर दो अलग–अलग दिखाई देने वाली ये क्रियाएँ दो नहीं वरन् एक क्षमा–धर्म के ही दो पहलू हैं। ये दोनों ही स्वयं हमारे लिए हितकारी हैं।

ऊपरी तौर पर क्षमा करने में हमें मात्र क्रोध–कषाय की मंदता का योगदान दिखाई देता है और क्षमा माँगने में मात्र मान–कषाय की मंदता का, पर तथ्य यह है कि क्षमा करने और क्षमा माँगने की इस प्रक्रिया में मात्र क्रोध और मान–कषाय ही नहीं वरन् मायाचार और लोभ की मंदता का भी उतना ही योगदान है। हमारी क्षमाहीन दशा के लिए मात्र क्रोध और मान–कषाय ही नहीं वरन् माया और लोभ समेत चारों ही कषाएँ समान रूप से जिम्मेदार हैं और **यह क्षमा–धर्म सभी कषायों की मंदता का सम्मिलित प्रतिफल है।**

यद्यपि यहाँ क्षमा की मुख्यता से कथन चल रहा है पर चारों कषायों की मंदता के फलस्वरूप मात्र क्षमाधर्म ही प्रकट नहीं होता है वरन् धर्म के दशों लक्षण, यथा – **उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य** सभी प्रकट होते हैं।

चारों ही कषायें एक साथ ही रहती हैं, अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन के अनुरूप एक साथ तीव्रता और मंदता को प्राप्त होती हैं और एक साथ ही नष्ट होती हैं।

ऐसा नहीं होता है कि किसी के क्रोध-कषाय तो अनंतानुबंधी है पर लोभ मात्र संज्वलन संबंधी शेष रहा हो।

इसप्रकार जहाँ जिस तीव्रता का क्रोध विद्यमान है वहाँ उसी तीव्रता के मान, माया और लोभादिक भी विद्यमान होते हैं और जहाँ क्रोध मंद हुआ अथवा नष्ट हुआ तब वही हाल अन्य कषायों का भी होता है। हमें उनमें अंतर दिखाई देना हमारी दृष्टि का दोष है।

यह एक तथ्य है कि हम सभी को निरपराध दशा और जीवन पसंद है। हममें से **अधिकतर लोग ऐसे हैं जो निरपराध दशा ही पसंद करते हैं। हम दूसरों के द्वारा अपराधी कहलाना तो चाहते ही नहीं हैं, पर स्वयं अपने अंतर में भी अपराधबोध के साथ नहीं जीना चाहते हैं।** अफ़सोस! अपराध तो हमसे हो ही जाते हैं। इसलिए हमारी प्रवृत्ति ऐसी है कि **जब हमसे किसी के प्रति कोई अपराध होता है तो अपने अपराधबोध को दूर करने के लिए हम मायाचार का सहारा लेकर अपने उन अपराधपूर्ण कुकृत्यों को उचित और अपरिहार्य (unavoidable) ठहराने के तर्क खोजते हैं।** ''उसने ऐसा किया इसलिए मुझे ऐसा करना पड़ा'' इत्यादि। यह आत्मप्रवंचना (चालबाजी, self-trickery) है। **हमें अहसास तक नहीं है कि हमारी यह वृत्ति हमारा मायाचार है।**

यदि हम सूक्ष्मता से विचार करेंगे तो पाएँगे कि सच्ची क्षमा-भावना चारों कषायों की मंदता के परिणामस्वरूप प्रकट होती है जिसमें मायाचार भी शामिल है, पर इसके उलट यदि **अंतरंग में कषायों की मंदता न हुई हो तो बाह्य व्यवहार में 'क्षमा करना या**

क्षमायाचना' दोनों ही क्रियाएँ मायाचार की श्रेणी में ही आएँगी, क्योंकि यहाँ बाह्य में क्षमाभाव के प्रदर्शन के पीछे अंतरंग क्षमा रूप परिणति का आधार नहीं है।

उक्त कथन अंतरंग परिणति का अतिसूक्ष्म विश्लेषण है। यह सब होते हुए भी वास्तविक जीवन में वाचिक क्षमायाचना का व्यवहार तो हर भूमिका में होता ही है, होना ही चाहिए, यह अपरिहार्य (unavoidable) है।

उक्त प्रकार का **अंतरंग के कषायों की मंदता के आधार के बगैर बाह्य व्यवहार में क्षमा के आदान-प्रदान का व्यवहार भी मात्र मायाचार ही नहीं वरन् चारों ही कषायों की तीव्रता के फलस्वरूप भी प्रतिलक्षित हो सकता है।** यथा-

अंतरंग में क्रोध-कषाय का ही एक रूप वैर तो विद्यमान है जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में बदला लेने का भाव तो पल रहा है, पर अभी परिस्थितियाँ अनुकूल न होने से अनुकूल वक्त आने पर बदला लेने के संकल्प के साथ वक्त टालने के उद्देश्य से प्रदर्शित किया गया क्षमाभाव, क्रोध के साथ-साथ मायाचार आदि कषायों की तीव्रता का परिचायक होता है न कि कषायों की मंदता का।

क्षमा का ऐसा छद्म प्रदर्शन (पाखण्ड) सामने वाले पक्ष को भ्रम में डाल देता है। वह हमें शांत देखकर हमारी ओर से निश्चिन्त होकर लापरवाह हो जाता है। अपनी सुरक्षा के प्रति जागरूक नहीं रहता है और परिणामस्वरूप धोखा खाता है। इस प्रकार **जहाँ वास्तविक क्षमाभाव सामने वाले पक्ष को निर्भय करता है, हमारे द्वारा क्षमा का इस प्रकार का छद्म प्रदर्शन उसके अनिष्ट का कारण बनता है।** इस प्रकार हम पाते हैं कि जो क्षमा भय से बचकर निर्भय होने के लिए हमारे लिए रक्षा-कवच का काम करती है **उसी क्षमा का बनावटी छद्मरूप अपने शत्रुओं को गाफिल करके उनके ऊपर वार करने के लिए घातक हथियार भी बन जाता है।**

कोई इस भ्रम में ना जिए कि इस प्रकार की छद्म-क्षमा भी हमें क्षमाधर्म के समान ही लाभ प्रदान करेगी, यह क्षमाधर्म नहीं वरन् पाखण्ड है। सामने वाले पक्ष को या किसी व्यक्ति विशेष को अपने छल-बल से भ्रमित किया जा सकता है पर वस्तुस्वरूप को धोखा नहीं दिया जा सकता है। हमें वास्तविक प्रतिफल तो वैसा ही मिलेगा जैसे हमारे परिणाम होंगे। क्षमा का स्वाँग करने पर हमें मायाचार का ही फल मिलेगा।

उक्त ही प्रकार अंतरंग में तीव्र मान-कषाय के विद्यमान होने के कारण हमारे भाव किसी के समक्ष अपनी क्षमायाचना के नहीं हों पर क्षमा न माँगे जाने की स्थिति में सामने वाले की ओर से आक्रमण और अपने घात की संभावना को देखते हुए भय के कारण अथवा मान-कषाय के जोर में अपने-आपको क्षमाभाव का धारी दिखने हेतु **ऊपरी तौर पर मात्र दिखावटी क्षमायाचना भी हमारे अंतरंग में तीव्र कषाय की विद्यमानता की ही सूचक है। यह धर्म नहीं है।**

यद्यपि निर्भय होना क्षमायाचना का स्वाभाविक प्रतिफल होता है पर अपने दुष्कृत्य के प्रतिफल में मिलनेवाले भयावह दंडात्मक-दुष्परिणाम से भयभीत होकर क्षमायाचना करना भी सच्ची क्षमायाचना नहीं है। यह क्षमाधर्म नहीं है।

भय-लोभ आदि कषाय-परिणामों के आश्रय से बाह्य में प्रकट क्षमायाचना आत्मा का धर्म नहीं हो सकता है। असली क्षमाभाव किसी भय या लोभ के प्रभाव से नहीं वरन् कषायों की मंदता से प्रकट होता है।

कभी-कभी अंतरंग में तीव्र क्रोध और मान-कषाय के विद्यमान रहते हुए भी समाज के बीच क्षमाशील, सरल-स्वभावी और धर्मात्मा कहलाने के लोभ में हमारी वाणी और बाह्य व्यवहार में क्षमाशीलता दिखाई दे सकती है। हमें स्वयं को और अन्यों को इससे भ्रमित नहीं होना चाहिए। **यह धर्म नहीं है।**

हमारे उक्त प्रकार के छद्मव्यवहार के परिणामस्वरूप **कभी-कभी तो हम स्वयं ही अपनी यथार्थ कषायरूप परिणति का सही आकलन नहीं कर पाते हैं और भ्रमवश तीव्र कषायों के विद्यमान रहते हुए भी अपने-आपको मंदकषायी और क्षमाधर्मधारी धर्मात्मा मान बैठते हैं।** इसका एक कारण यह भी होता है कि हमारा कृत्रिम क्षमाभाव देखकर भ्रम में पढ़ गए लोग हमारी क्षमाशीलता के बखान करने लगते हैं और उनके ऐसे अयथार्थ बखान को सुनकर हम स्वयं ही भ्रम में पड़ जाते हैं और अपने-आपको क्षमाशील मान बैठते हैं।

दरअसल हम सभी बड़े स्थूलदृष्टि हैं और हमारे अपने सूक्ष्म परिणाम स्वयं हमारी पकड़ में नहीं आते हैं। यही कारण है कि इतना आसान-सा दिखाई देने वाला मोक्ष और मोक्षमार्ग हमें प्राप्त नहीं होता है।

जब हमारे अभिप्राय की इन सूक्ष्म भूलों की महीन पर्तें (Finer layers) उघाड़कर दिखाई जाती हैं तो हम लोगों का व्याकुल हो उठना स्वाभाविक ही है कि हम अपनी ऐसी-ऐसी अनगिनत और सूक्ष्म भूलों को कब और कैसे सुधार पाएँगे जो हमें नजर ही नहीं आती हैं। तब हमें लगने लगता है कि यह सब कैसे होगा, हमारा कल्याण कैसे होगा, कभी हो भी पायेगा कि नहीं?

घबराने की आवश्यकता नहीं है। विषवृक्ष की एक-एक साख और एक-एक पत्ती का अलग-अलग उपचार करने की आवश्यकता नहीं होती है। सिर्फ मूल (जड़) को नष्ट कर देने से सम्पूर्ण वृक्ष ही नष्ट हो जाता है। उसीप्रकार **इन सब भूलों, पापों और अपराधों के मूल, मिथ्यात्व का समूल नाश होने पर ये सब दोष स्वत: नष्ट हो जाते हैं।** हमें तो अपने मिथ्यात्व को नष्ट करने का सम्यक् पुरुषार्थ ही करना चाहिए।

तब कोई कह सकता है कि यदि ऐसा ही है और इन सब सूक्ष्म

भूलों का कोई महत्त्व ही नहीं है तो क्यों इन महीन पर्तों को उघाड़-उघाड़कर हमें डराया जाता है?

ऐसा करना इसलिए जरूरी है कि हमें अपनी कमियों और दोषों का ज्ञान बना रहे। कहीं ऐसा न हो कि इन सब दोषों के रहते हम अज्ञानवश अपने-आपको निर्दोष मानते रहें। यदि ऐसा हुआ तो अपने दोषों को दूर करने के हमारे प्रयत्न ही बंद हो जाने का भय रहता है।

यह इसलिए भी जरूरी है कि भय अथवा लोभ के दबाव से क्षमापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित कर रहे अन्य लोगों को भी हम क्षमाधारी न मान बैठें और उनसे छले ना जाएँ।

●

हम सिद्धान्तवादी नहीं, सुविधाभोगी जीवन जीते हैं। जहाँ कोई तथाकथित सिद्धान्त हमारे क्षणिक-स्वार्थ का पोषण करता है, वहाँ हम सिद्धान्तवादी बन जाते हैं और किसी क्षुद्र से स्वार्थ की पूर्ति में यदि बड़े से बड़ा सिद्धान्त बाधक बनता है, तो हम उसकी भी परवाह नहीं करते हैं।

– अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-16

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

अपने चरित्र का पतन कर व स्नेहीजनों और समाज की भावनाओं को आहत कर हम धन-दौलत तो जुटा सकते हैं, पर फिर धन-दौलत लुटाकर चरित्र व भावनायें पैदा नहीं की जा सकतीं। इसलिए मैं कहता हूँ कि ये वस्तुएँ भी बाजारु नहीं, क्योंकि ये भी बाजार के नियमों का पालन नहीं करतीं। – अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-18

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

हमने अनुसरण भी किया तो वह भी भीड़ का। भरी भीड़ में खड़े एक जनसामान्य की मानसिकता का अनुसरण किया। उसकी ही विचारधारा अपना ली, उसके जैसा ही आचरण करने लगे, उसके जैसी ही क्रियायें-प्रतिक्रियायें व्यक्त करने लगे। पर क्या कभी विचार किया कि ऐसा करके हम क्या पा सकेंगे?

अरे! और क्या पा सकेंगे, भीड़ का अनुसरण करके तो हम मात्र भीड़ का ही हिस्सा बन सकते हैं। – अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-28

18

धर्मात्मा होने के लिए हमें वक्रता का त्याग करके सरल होना होगा

हम में से शायद ही कोई यह जानता और मानता है कि **आज की भाषा में हम जिसे सभ्यतापूर्ण व्यवहार या street smartness और व्यवहार–कुशलता का नाम देते हैं एवं अपने मनोभावों को तोड़–मरोड़कर अलंकारिक भाषा में प्रकट करने तथा दोषों को गुणरूप और गुणों को दोषरूप प्रस्तुत करने की अपनी इस योग्यता पर गर्व करते हैं, यह घोर मायाचार है। यह कषायपूर्ण परिणाम है। यह सब संसार परिभ्रमण का कारण है।**

जगत में हम लोगों की वृत्ति ऐसी होती है कि हम सबके सामने बढ़–चढ़कर उनकी झूठी प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं और उसके पीठ फेरते ही उसकी बढ़–चढ़कर निंदा करने लगते हैं। वास्तविकता में ये दोनों ही वृत्तियाँ हमारा मायाचार हैं।

हालाँकि जगत के लोग इन दोनों व्यवहारों में फर्क करते हैं। यद्यपि वे किसी की प्रशंसा करने को सकारात्मक स्वभाव (positive attitude) मानते हैं और निंदा को नकारात्मक स्वभाव (negative attitude) मानते हैं। पर परमार्थ (आत्मकल्याण का मार्ग) में तो ये दोनों ही एक ही श्रेणी में आते हैं। दोनों ही मायाचार हैं।

जगत में हम लोग स्वभाव की ऐसी सरलता को मूर्खता मानते हैं जिसमें कोई जैसी की तैसी सच्ची और यथार्थ बात करे, और सभ्यता की भाषा में इसे भोलापन (innocence) कहते हैं। किसी के ऐसे व्यवहार को उसका बचपना बतलाते हैं। हम यह मानते हैं

कि इस व्यक्ति में अभी समझ का विकास नहीं हुआ है अथवा इसमें सभ्यता नहीं है। इसमें विवेक का अभाव है।

जगत में ऐसा कोई व्यक्ति यदि हमारा प्रिय पात्र है जो सरल शुद्ध, सीधा-सादा व्यवहार करता है तो हम इस चिंता में भी डूब जाते हैं कि इस संसार में इसकी निभेगी कैसे?

उनकी इस चिंता से मैं सहमत हूँ। सच ही तो है, ऐसे लोग अब संसार में रहने योग्य नहीं हैं, इनका स्थान तो मोक्ष में है।

जगत के लोगों को तो बस छलने और छलाने वाले लोग पसंद आते हैं जो निरन्तर एक-दूसरे को छलने और छलकर ठगने के प्रयास में लगे रहते हैं। जिसका दाव लग जाता है वह दूसरों को ठग लेता है और जो चूका वह खुद ठगा जाता है।

सीधी-सी तो बात है, संसार मोक्ष का विरोधी है और जो (विचार, आचरण और व्यवहार, प्रवृत्ति और परिणति) संसार में अच्छी मानी जाती हैं वे मोक्षमार्ग में हेय और बाधक हैं। सांसारिक विषयों में व्यवहार-कुशल व्यक्ति तीव्र मायाचारी और घोर संसारी है, वह मोक्ष और मोक्षमार्ग से विमुख है और अभी उस पर मोक्षमार्ग की छाया तक नहीं पड़ी है।

अरे! और तो और, कैसी विडंबना है कि हमें सिर्फ हम जैसे घनघोर, आकंठ (गले तक डूबे हुए) संसारी लोग ही नहीं वरन् साधु-संत भी ऐसे ही व्यवहार-कुशल चाहिए। हम तो संतों को भी एक संसारी की निगाह से ही देखते हैं। हमें तो संत भी भोले नहीं चाहिए, हम तो **धर्मात्माओं के भी सांसारिक विषयों में तथाकथित व्यवहार-कुशल आचरण और व्यवहार पर ही रीझते हैं। और तो और हमें संत भी व्यवहार-कुशल ही पसंद आते हैं। हम यह जानते ही नहीं कि वे जो बातें सांसारिक लोगों में विशेषताएँ मानी जाती हैं, ये सब साधुता के विपरीत आचरण हैं। जो आचरण और व्यवहार**

श्रावकों के लिए आवश्यक होता है वही संतों के लिए हेय की श्रेणी में आता है। सर्वश्रेष्ठ श्रावक जैसा आचरण साधु को साधुता के लिए अपात्रता की श्रेणी में ला देता है। हमें यह विचार ही नहीं आता है कि तुम इनमें जो खोजने का प्रयास कर रहे हो वही सब छोड़कर तो वे साधु हुए हैं, तुम्हें अब भी उनमें वही सब चाहिए!

ठीक उसी प्रकार जैसे बच्चे जब बच्चों जैसा मासूम व्यवहार करते हैं तब हम उन पर रीझते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं, पर यदि वैसा ही व्यवहार कोई प्रौढ़ व्यक्ति करे तो हम उसकी आलोचना करते हैं कि – ''कैसी बच्चों जैसी बातें (हरकतें) करते हो!''

कैसे विचित्र हैं, हम कि हमें तो सभी से कपटपूर्ण, twisted sugar coated behaviour की ही अपेक्षा रहती है, हम उसे ही अच्छा समझते हैं। अभागे ही हैं हम कि किसी के व्यक्तित्व और व्यवहार की सरलता उस व्यक्ति को हमारी नजरों में बेचारा बनाती है। हम उसे भोला (मूर्ख) मानकर उस पर दया करते हैं। उसे किसी लायक नहीं समझते हैं।

सच ही तो है ऐसे सीधे–सरल व्यवहार वाला व्यक्ति संसार के लायक नहीं रहा, अब उसके लिए संसार में कोई स्थान नहीं, अब उसे संसार त्यागना ही होगा, मोक्ष जाना ही होगा।

वैसे तो संतों का किसी गृहस्थ के साथ कोई चर्चा–वार्ता का व्यवहार होता ही नहीं। यदि कभी करुणाबुद्धि से उपदेश देने का भाव आ ही जाए तो उपदेश तक सीमित और एक–तरफ़ा व्यवहार ही होता है। संतों का व्यवहार तो मासूम बालकों के व्यवहार के समान ही मासूमियत भरा, सीधा और सपाट होता है। उनकी वाणी या व्यवहार में हमारे समान आज के तथाकथित सभ्यता, शिष्टाचार, औपचारिकता, प्रताड़ना या खुशामद, व्यंग्य, क्रोध, भय, आशा–

अपेक्षा, द्वेष अथवा राग, पक्षपात या घुमाव–फिराव आदि के भाव और मुँह देखी बातें नहीं होती हैं।

उक्त सभी तो कषायपूर्ण व्यवहार के ही उदाहरण हैं।

यदि संतों में भी हमें उपरोक्त प्रकार के मनोभाव ही दिखाई दें तो फिर हममें और उनमें फर्क ही क्या रहा?

क्या हमने कभी विचार किया कि संसार की कथित व्यवहार–कुशलता क्या है। यह सरलता है या कुटिलता है, किस श्रेणी में आता है यह व्यवहार–कुशल व्यवहार?

सामने वाले के हित–अहित की परवाह किये बगैर अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उसके सामने उसके उन गुणों का बखान जो उसमें हैं ही नहीं और उसकी पीठ पीछे उसके गुणों को भी अवगुण के रूप में प्रस्तुत करना।

सीधी–सच्ची बातों को घुमा–फिराकर कहना, कोई समझ ही न पाए कि आपका आशय क्या है और तीर का निशाना किस ओर है। सरल से काम को जटिल कर देना। जो सन्देश एक वाक्य में दिया जा सकता है उसके लिए छह वाक्यों का प्रयोग करना और फिर भी अगर बात उल्टी पड़ती दिखे तो पलट जाना। यही व्यवहार–कुशलता कहलाती है ना? क्या यह मायाचार नहीं है?

अधिक क्या कहूँ, इस विषय के तो सभी लोग विशेषज्ञ हैं, सब बड़ी अच्छी तरह से जानते हैं कि संसार की कथित व्यवहार–कुशलता के नाम पर हम सभी लोग कैसा मायाचारी व्यवहार करते हैं। सिर्फ प्रयोजनभूत विषयों में ही नहीं, व्यर्थ ही। हमारी फितरत (nature) ही ऐसी है कि हम सीधी और यथार्थ बात कर ही नहीं सकते हैं। हमें तो रंजित (बनावटी) बातें करना ही अच्छा लगता है। एक बार फिर वही बात दोहराना चाहूँगा कि सीधी–सीधी बात करना

तो हमें अनाड़ीपन सा लगता है, हमें तो इसी में प्रतिभा सम्पन्नता दिखाई देती है कि काले तो सफ़ेद और सफ़ेद को काला साबित करने में हम कितने सक्षम हैं।

अक्सर हमने देखा है कि बच्चे सब बातें सीधे-सपाट ढंग से कह देते हैं। जैसा देखा, सुना, जाना अथवा जो मन में आया बोल देते हैं। उनकी बातों में दुराव-छिपाव या घुमाव नहीं होता है। वे जैसे हैं, उन्हें लोगों द्वारा अपने-आपको वैसा ही जाने-जाने में कोई हिचक नहीं होती है। उनमें, वे जैसे हैं उससे पृथक् कुछ भिन्न दिखने की ललक या अभिलाषा अबोध निश्छल बालकों में नहीं होती है। उनमें अपने मंतव्यों के प्रति कोई अपराधबोध नहीं होता है। वे image conscious नहीं होते हैं। उनकी इस प्रकार सीधी-सपाट प्रस्तुति की वजह से हमें उनकी बातों में message between lines पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती है। **संत-हृदय भी ऐसे ही होते हैं, बालकवत सीधे और सपाट। उनके पास छुपाने के लिए कुछ नहीं है, न तो बाहर में और न ही अंतर में। इसीलिए वे तन से भी नग्न रहते हैं और उनका अंतस्तल भी बिना दुराव-छिपाव वाला ही होता है।**

कपट का सहारा कोई भी कमजोर व्यक्ति आशा, अपेक्षा, भय अथवा लोभ के आवेग में ही लेता है। वे संत जो सामान्यजन में पाई जाने वाली इन कमजोरियों से मुक्त हैं, भला वे क्यों छल-कपट का सहारा लें?

कैसा विरोधाभास है कि कहने को तो हम मोक्षप्रेमी हैं, हमें मोक्ष जाना है और व्यवहार में हमें संसार, संसारी-लोग और कपटपूर्ण सांसारिक व्यवहार-कुशल आचरण व व्यवहार ही पसंद आता है। क्या सचमुच ऐसे लोगों के लिए दिल्ली अभी दूर नहीं है?

हमें दो में से एक को चुनना होगा।

●

19

हमें नीर–क्षीर विवेकी होना होगा

अपनी अपराधवृत्ति और अपराधों को महिमा–मंडित करने के लिए हमने कैसे–कैसे अलंकारिक (decorative) जुमले (sayings) गढ़ लिए हैं, यथा –

क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल है।
उसको क्या जो दंतहीन, विषहीन विनीत सरल है।।

(भुजंग = साँप, गरल = जहर)

उक्त उक्ति के बारे में तो सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि– ''**तीव्र मिथ्यात्व के उदय में ऐसी बातों के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।**''

किसी विशेष लौकिक–संदर्भ में कही गई उक्त उक्ति का सहारा लेकर हम सदा सिर्फ अपने विषदंतों का ही प्रदर्शन करते रहते हैं, हमारी विनय और सरलता तो कहीं दिखाई ही नहीं देती है।

कवि ने कब कहा है कि विषदन्त शोभा देते हैं, कवि ने तो कहा है कि जिसके विषदन्त होते हैं उसकी क्षमा (उसके विषदन्त नहीं) शोभायमान होती है।

अरे भोले! यह तो अज्ञानी लोगों के अज्ञानपूर्ण निष्कर्ष का उदाहरण है, यह आदर्श और यथार्थ नहीं है। अज्ञानी लोगों को विनीत और सरल लोगों की क्षमा दिखाई नहीं देती, क्षमा–सी नहीं लगती, मजबूरी मालूम होती है। ज्ञानियों के साथ ऐसा नहीं है।

उक्त उक्ति का सीधा–सादा अर्थ यह है कि जब एक प्रतिरोध (resistance) करने और प्रतिशोध (revenge) लेने में सक्षम व्यक्ति

क्षमा–धारण करता है तो उसकी क्षमाभावना अलग दिखाई देती है, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि वह चाहे तो ईंट का जवाब पत्थर से दे सकता है। किसी कमजोर व्यक्ति के बारे में सामान्यजन यह नहीं समझ पाते हैं कि उसकी सरलता और क्षमाभावनापूर्ण व्यवहार सचमुच उसकी अंतरंग क्षमारूप परिणति का प्रतिफल है या प्रतिशोध लेने में उसकी असमर्थता; अथवा यह उसके भय का परिणाम है। बहिर्दृष्टि वाले हम लोग उसके क्षमापूर्ण व्यवहार को उसकी कमजोरी मान लेते हैं।

एक बात और समझने जैसी है कि – ''**जहाँ हम धर्म–क्षेत्र के बारे में विचार और निर्णय कर रहे हैं वहाँ हमें वीतरागी धर्माचार्यों के कथनों पर ही विचार और विश्वास करना चाहिए, लौकिक अथवा रागी–द्वेषी लोगों के कथनों पर नहीं।**''

यह तो तय है कि अन्यमती, रागी–द्वेषी, अल्पज्ञानी–अज्ञानी जगतजनों की मान्यताएँ तो निश्चित ही वीतरागी, सर्वज्ञ, देव–शास्त्र और गुरुओं के प्रतिपादन के विपरीत ही होंगी।

कदाचित् कोई वीतरागी–सर्वज्ञदेव के नाम से भी हमसे ऐसी बातें कहे तो हमें इसी आधार पर इन बातों को खारिज कर देना चाहिए कि ये वीतरागता की पोषक नहीं हैं वरन् राग–द्वेष की प्रेरक हैं इसलिए ये धर्म नहीं हो सकती हैं।

हम भी कितने भोले (मूर्ख) हैं कि हम आत्महित से सम्बन्धित विषयों में किसी भी राह चलते आदमी के बहकावे में आ जाते हैं। उसे अपना गुरु बना लेते हैं, उसके प्रति समर्पित हो जाते हैं?

क्या हम अपने प्रतिवादी के प्रतिपादन को सही साबित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ लेते हैं?

क्या हम दुनियादारी के मामलों में भी ऐसा ही करते हैं? नहीं न! तब क्यों जब धर्म का विषय आता है तो हमारी बुद्धि पर पत्थर पड़ जाते हैं?

अरे भोले भगवान! हमने दुनिया के किसी भी ऐरे–गैरे अज्ञानी व्यक्ति के कषायों से प्रेरित, कषायपूर्ण कथनों को सही साबित करने का और आपकी–अपनी मान्यताओं से सहमत होने का ठेका नहीं लिया है। वरन् **हमने तो वीतराग–सर्वज्ञदेव द्वारा किये गए वस्तुस्वरूप के यथार्थ प्रतिपादन का प्रचार–प्रसार करने की साई (advance, contract) ली है।**

ये तो सब आधारभूत बातें हैं जिनका हम विवेक ही नहीं रखते हैं, ऐसों को तो क्या कहिएगा?

अरे भोले! जो अंतरंग परिणति को नहीं पहचानता है, उसका विवेक नहीं रखता है और मात्र बाहरी लक्षणों को देखकर ही निर्णय कर लेता है वह तो जगत में भी मूर्खों की श्रेणी में गिना जाता है। क्या तुझे भी ऐसे मूर्खों से ही वाहवाही लूटकर उनका सरदार (मूढ़न में मुखिया) बनना है? आखिर तुझे अज्ञानियों की ओर से वाहवाही की चाहत क्यों है? उनके द्वारा धर्मात्मा मान लिए जाने से तू धर्मात्मा तो हो नहीं जाएगा और यदि वे तुझे धर्मात्मा न मानें तो तू अधम भी नहीं हो जाएगा।

मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या आप भी उक्त उक्ति (क्षमा शोभति.....) से सहमत हैं? **हमारा और आपका उद्देश्य क्या है? हमें क्षमाधर्मधारी धर्मात्मा होकर निराकुल और सुखी होना है या हमें जगत के लोगों की निगाह में क्षमाशील व्यक्ति होने का यश चाहिए, हमें सचमुच धर्मात्मा होना है या सिर्फ धर्मात्मा दिखना है?** क्या हमें जगत के उन लोगों की निगाह में चढ़ना है जिनकी दृष्टि ही

स्थूल है, जिनके पैमाने ही दोषपूर्ण हैं, जो एक सच्चे कषाय-रहित जीव की कषाय-रहित परिणति को पहचान ही नहीं सकते हैं।

आखिर हमें जगत के अज्ञानी लोगों की निगाह में चढ़कर क्या मिलेगा? क्या इससे हमारा कल्याण हो जाएगा?

दुर्भाग्य तो यह है कि हमें न तो साध्य का पता है और न ही उसके साधन का। हम निकलते हैं कुछ और करने के लिए एवं कर बैठते हैं कुछ और। यदि हमारे विचारों में स्पष्टता हो और अपने लक्ष्यों को पाने की दृढ़ इच्छाशक्ति हो तो हमें कोई अपने मार्ग से च्युत (भटका) नहीं कर सकेगा। इसके लिए आवश्यक है कि हम इन सारे तथ्यों को बारीकी से जानें और समझें।

हमें स्वयं नीर-क्षीर विवेकी होना होगा।

●

यह तर्क बिलकुल ही बेमानी है कि उसने हमारी माँ की कोख से जन्म नहीं लिया, फिर आखिर वह हम जैसा कैसे हो सकता है, हमारा कैसे हो सकता है। यदि अपनेपन का यही मापदण्ड है तो फिर यही फार्मूला अपनी ब्याहता स्त्रियों पर भी तो लागू होता है! पर वे तो समय पाकर अपने सहोदर (भाई) से बढ़कर हो जाती हैं। अरे! बढ़कर क्या? वे ही सब कुछ हो जाती हैं, सहोदर (भाई) तो अन्य (पराया) हो जाता है।

– अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-24

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

जिस पैसे के लिए हम अपना सारा जीवन झोंक डालते हैं, क्या वह सम्पूर्ण पैसा देकर भी हम पुनः जीवन का एक क्षण भी खरीद सकते हैं? नहीं! तब हम अपना यह जीवन धनोपार्जन में कैसे झोंक सकते हैं?

– अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-18

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

क्या मुझे स्वयं चिन्तनपूर्वक अपने लिए, अपनी रुचियों व योग्यताओं के अनुरूप, अपने लिए हितकारी जीवनशैली का विकास नहीं करना चाहिए था, क्या अपने इस जीवन के लिए कुछ लक्ष्य निर्धारित नहीं करने चाहिए थे; और फिर उन लक्ष्यों की पूर्ति करने वाली जीवनशैली नहीं अपनानी चाहिए थी? – अन्तर्द्वन्द, पृष्ठ-27

20

पुरुषार्थ कषायों के शमन में है क्रियान्वयन में नहीं

हम बातें कुछ भी करें, चाहे कितने भी महंत बनें, पर हमारी कषायपूर्ण वृत्ति सभी लोगों में कषायपूर्ण आचरण और व्यवहार ही देखना चाहती है, हम वही पसंद करते हैं, उसी की प्रशंसा करते हैं, अनुमोदना करते हैं।

यदि कोई किसी को गाली दे और सामने वाला शांति से सुनता रहे तो हमें मजा नहीं आता है, हम उसे बुज़दिल और कायर कहते हैं। हम चाहते हैं कि वह ईंट का जवाब पत्थर से दे। हम उसे उकसाते भी हैं। यदि वह ऐसा ही करे तो हम तालियाँ बजाकर उसे प्रोत्साहित करते हैं। हमें इस बात से कोई सरोकार नहीं होता है कि गलत कौन है और सत्य क्या है, हमें तो बस तमाशा देखना है। इसी से पता चलता है कि हम कैसे लोग हैं।

हाँ! **यह सच है कि क्षमाधारी जीव के पास किसी से बदला लेने का सामर्थ्य होता ही नहीं है, क्योंकि किसी से बदला लेने के लिए जिस तीव्र कषाय के सहारे की आवश्यकता होती है वह तीव्र कषाय उसके पास है ही कहाँ?**

क्षमा उसकी कमजोरी नहीं, उसके आत्मबल की सामर्थ्य और कषाय की मंदता का प्रतीक है।

हाँ! यह सच है कि क्षमा धारण करके शांत बने रहने के लिए बड़ी क्षमता, धैर्य और पुरुषार्थ चाहिए। यह किसी सामान्यजन के बूते की बात नहीं है। सामान्यजन तो ऐसी स्थिति में अपने-आपको रोक ही नहीं पाते हैं और अपने सर्वनाश की कीमत पर भी अपनी कटु प्रतिक्रिया व्यक्त करते पाए जाते हैं। यह तो हम सभी का अनुभूत तथ्य है। क्या आपको ऐसा कोई अनुभव नहीं है?

अब आप ही निर्णय करें कि **ऐसी विषम स्थिति में प्रतिक्रिया व्यक्त करना आसान है अथवा शांत बने रहना? पुरुषार्थ की आवश्यकता किसमें है?**

जैसे किसी कमजोर रोगप्रतिरोधक क्षमता वाले व्यक्ति को मौसम के मामूली से मामूली फेरबदल बीमार कर देते हैं, उसी प्रकार **यह तो हमारी कमजोर मानसिकता का उदाहरण है कि हम छोटी-छोटी बातों पर कभी भी, कहीं भी किसी से भी उलझते रहते हैं।** उन्हें नजरअंदाज करने की क्षमता हममें नहीं है।

अरे! **यह तो उस ज्ञानी धर्मात्मा की सामर्थ्य का प्रतीक है कि वह ऐसी छोटी-मोटी बातों पर ध्यान ही नहीं देता है, उनसे विचलित (disturb) नहीं होता है।**

अरे! कोई कमजोर-सा छोटा बालक भारत-केसरी पहलवान को ललकारे और वह भारत-केसरी पहलवान मात्र मुस्कराकर उसे नजरअंदाज (ignore) करदे तो क्या यह माना जाए कि वह महाबली भारत-केसरी पहलवान उस छोटे से मासूम बालक से डर गया है? क्या अपनी सामर्थ्य को साबित करने के लिए उस भारत-केसरी पहलवान को उस बालक से भिड़ जाना चाहिए? **अरे भाई! उसका यही नजरअंदाज करने वाला व्यवहार उसकी सामर्थ्य का प्रतीक है कि वह ऐसी बातों पर ध्यान ही नहीं देता है। यदि वह ऐसे अपात्र लोगों से भिड़ जाए तो यह उसकी अपरिपक्वता और बचकानापन ही माना जाएगा।**

क्या हम भी अपने बालकों के नादानी भरे अनुपयुक्त व्यवहारों से विचलित होते हैं, क्या हम उन्हें नजरअंदाज नहीं कर देते हैं? इसी को तो क्षमाभाव कहते हैं। बस **जैसा हमारा क्षमाभाव अपने बालकों के प्रति होता है वैसा ही सभी के लिए होना चाहिए, प्राणिमात्र के लिए**

होना चाहिए। एकदम सहज, किसी भी प्रकार की कषाय से रहित, हीनता अथवा उच्चता की भावना से परे। दया–मेहरबानी की भावना से पार। हिसाब–किताब की सीमा से परे। लेन–देन की भावना रहित।

अन्तरंग में व्याप्त उक्त मायाचारी परिणामों की मंदता के बगैर अपने द्वारा किये गए अपराधों की स्वीकृति और उसके प्रति हेयता का भाव होना संभव ही नहीं है। इसी तरह मान–सम्मान के लोभ के परित्याग के बिना सबके सामने अपने दोष स्वीकार करना भी संभव नहीं है। इस प्रकार हम पाते हैं कि **क्षमा धारण करने की क्रिया में मात्र क्रोध और मान–कषाय की मंदता ही नहीं वरन् मायाचार और लोभ–कषाय की मंदता का भी बराबरी का योगदान शामिल है।**

कोई एक कषाय अपने–आपमें परिपूर्ण और हमारी किसी एक प्रवृत्ति के लिए अकेले ही जिम्मेदार नहीं है, किसी एक कषाय की प्रमुखता के फलस्वरूप दिखने वाले जीव के किसी एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार में भी जीव की सभी चारों कषायों का समान योगदान है। ऊपरी तौर पर जब जिस कषाय का जोर दिखाई देता है, स्थूल दृष्टि में आरोप मात्र उस एक कषाय पर आ जाता है पर अव्यक्त में उसमें सभी चारों प्रकार की कषायों का बराबरी का योगदान होता है। **इस प्रकार हमारी भूमिका के योग्य क्षमा धारण करने में भी अपने स्वभाव के आश्रयपूर्वक सभी चारों कषायों की मंदता का समान योगदान है। मात्र क्रोध और मान–कषाय की मंदता का नहीं।**

यह एक तथ्य है कि **चारों ही कषायें एक साथ समान रूप से तीव्र–मंद होती हैं अथवा नष्ट होती हैं। ऐसा नहीं है कि किसी के एक कषाय नष्ट हो जाए और दूसरी विद्यमान बनी रहे। ऐसा भी नहीं है कि**

एक कषाय तो अच्छी है, आवश्यक है, उपादेय है और दूसरी हेय है। कषायों के बीच अच्छी–बुरी या हेय–उपादेय का भेद करना मात्र हमारा अविवेक है। जैसे हम क्रोध को तो बुरा मानते हैं पर मान को अच्छा समझते हैं। स्वाभिमान के नाम पर मान का संरक्षण करना चाहते हैं। क्रोध को भी कभी अच्छा और कभी बुरा समझते हैं। जब क्रोध हमारे समर्थन में हो तो अच्छा और हमारे विरोध में हो तो बुरा। कोई हमारे प्रति छल–कपट भरा व्यवहार करे तो मायाचार बुरा कहलाने लगता है और कोई देशहित में अथवा अपने व्यापार के हित में कूटनीति (छल–कपट) करे तो हम उसके समर्थक बन जाते हैं।

हमें अपनी यह अवसरवादिता की वृत्ति छोड़कर निरपेक्ष रूप से (irrespective of) सभी कषायों को हेय स्वीकार करना होगा, तभी हमारा कल्याण संभव है।

●

एक और दृष्टि से भी विज्ञान का दृष्टिकोण संकुचित कहा जायेगा कि विज्ञान का लक्ष्य मात्र भौतिक साधन जुटाना है, भौतिक उपलब्धियाँ ही उसकी उपलब्धियाँ हैं। आध्यात्मिक उपलब्धियाँ उसका लक्ष्य नहीं हैं, उसका विषय नहीं हैं। अध्यात्म की ओर विज्ञान का ध्यान ही नहीं है। भौतिक सुख व उपलब्धियाँ मात्र सुखाभास हैं व तात्कालिक महत्त्व की वस्तुयें हैं, त्रैकालिक महत्त्व की वस्तु तो अध्यात्म व आध्यात्मिक उपलब्धियाँ हैं।

– क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?, पृष्ठ–16

❖❖❖❖❖❖❖❖❖

इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि धर्म की एक बात जो हमने सुनी है, वह 1000 वर्ष पहले कही गई थी या कि विज्ञान की जो बात हमने सुनी–पढ़ी है, वह 10–20 या 50–100 वर्ष पहले कही गई है?

हमारे लिए तो दोनों ही बातें सुनी–पढ़ी हुई हैं, स्वयं अनुभूत तो नहीं हैं न? तब धर्म क्यों अविश्वसनीय हो गया व विज्ञान क्यों विश्वसनीय बन गया? – क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?, पृष्ठ–19

21

वास्तविक उत्तम क्षमा अथवा धर्म के दश लक्षण क्या हैं?

कषायों के समर्थन में वही एक घिसा–पिटा तर्क हमारे सामने आता है कि – ''संसार में रहने के लिए इतनी कषायें तो चाहिए, इतना क्रोध तो आवश्यक है। मानव में स्वाभिमान तो होना ही चाहिए। यदि सीधा–सरल व्यवहार करें तब तो संसार में टिक ही नहीं सकते। अब न सही धन–दौलत का, पर मान–सम्मान का, प्यार और स्नेह का लोभ तो होता ही है'' इत्यादि।

उक्त विषय में मेरा कहना यह है कि – ''ठीक है भाई! यदि तुझे संसार में ही रहना है तो तेरी चिंता वाजिब है। संसार में अपने अस्तित्व के लिए तुझे इन सभी कषायों की संभाल करनी ही होगी और ये कषायें भी तेरा साथ देंगी ही देंगी। **यहाँ तो बात उन लोगों की चल रही है जिन्हें संसार में रहना ही नहीं है।''**

वस्तुत: तो सभी कषायें जीव के लिए समान रूप से घातक और भवभ्रमण की कारण हैं और इसलिए समान रूप से हेय हैं।

किसी के प्रति क्रोध और बैरभाव धारण करके हम स्वयं आकुलित रहते हैं। क्रोध को अग्नि कहा जाता है। अग्नि जिस पात्र में जलती है सबसे अधिक उसी पात्र को तपाती है। हमारे चित्त की क्रोधाग्नि स्वयं हमें ही उद्विग्न बनाए रखती है और परिणामस्वरूप हमारी to-do लिस्ट बढ़ती ही जाती है और हम सदा इंतकाम (revenge) के बोझ से बोझिल (burdened) बने रहते हैं।

अपनी ओर से सभी को क्षमादान दे देने से हमारे चित्त की क्रोधाग्नि शांत हो जाती है, हमारी to-do लिस्ट में से अन्यों को सबक सिखाने के काम कट जाते हैं और हमारा बोझ कम हो जाता है। **इस प्रकार अन्यों के अपराध क्षमा करके उनके प्रति वैर–विरोध के भाव का त्याग करना स्वयं अपने ऊपर हमारा सबसे बड़ा उपकार है। यह अन्यों के प्रति तो हमारा उपकार है ही पर यह हमारी क्षमा भावना का मूल उत्पाद (main product) नहीं, सह–उत्पाद (by-product) है।**

व्यावहारिक दृष्टि से विचार करें तो किसी को क्षमा कर देने से हमारे द्वारा उसके ऊपर किये गये उपकार का, उसके ऊपर प्रभाव अत्यंत सीमित है। क्योंकि उसके पास तो अभी तेरे जैसे असंख्यात शत्रु और भी हैं, असंख्यात में से हम जैसा एक रहा या एक कम हुआ क्या फर्क पड़ता है, वह तो आकुलित बना ही रहेगा, उसे तो अपनी सुरक्षा के इंतजाम करने ही होंगे।

इसमें प्रभावशाली उपकार तो हमारा स्वयं अपने ऊपर है। हम उसके प्रति क्षमाभाव धारण करके स्वयं इंतकाम की अनंत आकुलता से मुक्त होकर शान्ति का अनुभव करते हैं।

एक और ऐसी बात, जिसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता है, यह है कि **मात्र क्रोध का त्याग ही अथवा क्रोध एवं अन्य कषायों की मंदता एवं उन सभी का भूमिकानुसार त्याग ही उत्तम क्षमादि धर्म नहीं है। इसमें क्रोध के साथ भय का त्याग भी शामिल है।**

किसी **क्षमाधारी के मात्र क्रोध का ही अभाव नहीं होगा वरन् उसके भय का भी अभाव हो जाएगा। क्योंकि सच्चा और उत्कृष्टतम क्षमाधर्म तो इस श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) का नाम है कि– ''एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता है ही नहीं'' ऐसे में यदि मैं किसी के भले–बुरे का**

कर्त्ता नहीं रहा तो कोई अन्य मेरा भी तो कर्त्ता–धर्ता नहीं हो सकता है न! तब किसी से भय कैसा?

अब **हमारे चित्त में क्षमाभाव उत्पन्न होने के फलस्वरूप हमने जिन जीवों के प्रति क्षमाभाव धारण किया है उन्हें तो सम्यग्दर्शन हुआ नहीं है, उनके तो भय का अभाव हुआ नहीं है, इसलिए वे तो भयभीत रहेंगे ही रहेंगे। यदि वे भयभीत बने ही रहे तो हमने उन पर क्या उपकार किया? अपना भय त्यागने के लिए तो स्वयं उन्हें ही कर्त्ताबुद्धि का और दो द्रव्यों के बीच कर्त्ता–कर्म संबंध संबंधी मिथ्या मान्यता का त्याग करना होगा।**

इसप्रकार यह स्थापित होता है कि हमारा सम्यग्दर्शन, हमारा क्षमाभाव परोपकारी नहीं है, यह मात्र हमारे लिए हितकर है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में हमें स्पष्टपने यह समझ लेना चाहिए कि **धर्म एक स्वाधीन प्रक्रिया है, जो धारण करेगा वह स्वयं लाभान्वित होगा, अन्य कोई नहीं। धर्मात्मा का कोई उपकारी नहीं होता और धर्मात्मा परोपकारी नहीं होता।**

एक तथ्य यह भी है कि हम चाहे किसी का कितना भी भला–बुरा चाहें पर उनका हित–अहित तो स्वयं उनके कर्मोदय के आधीन है। **यदि उनके असाता का उदय न हो तो हम भले ही लाख चाहें, हम उनका तो कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं, नहीं बिगाड़ पाते हैं, इसीलिये तो वैर बाँधकर हम अपना हिसाब चुकता करने के लिए योग्य अवसर का इन्तजार करते रहते हैं। यदि कुछ करना–धरना हमारे हाथ में ही होता तो क्या हम तुरंत ही उससे अपना हिसाब चुकता न कर लेते?** हमारा वैर–विरोध तो कितने जीवों के साथ होता है, हम कदम–कदम पर तो अपनी लिस्ट में नए–नए शत्रु जोड़ते जाते हैं। सबक तो हम सभी को सिखाना चाहते हैं, पर कितनों के साथ ऐसा करना तो दूर, करने का भ्रम भी पाल पाते हैं?

तात्पर्य यह है कि यदि हम किसी के प्रति वैरभाव धारण करते हैं तो हमारे वैरभाव से उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता है, स्वयं हमारा चित्त ही कलुषित होता है। इसी प्रकार किसी को क्षमा करके हम किसी अन्य पर नहीं, स्वयं अपने ऊपर ही कृपा करते हैं। हम उस पर उपकार नहीं करते हैं, हम स्वयं अपने भय का त्याग करके निर्भय होते हैं। आत्मा को अनंतभय से मुक्ति दिलाना स्वयं अपने ऊपर हमारा बहुत बड़ा उपकार है। क्षमा आत्मा का धर्म है और यदि हम क्षमाधर्म धारण करते हैं तो हम ही सुखी होंगे, हमारा ही कल्याण होगा।

सही भी तो है, **धर्म हमने धारण किया है, धर्मात्मा हम हुए हैं तो उसका सुफल भी हमें ही तो मिलेगा ना!**

अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। हमने आज, अभी अपने चित्त में क्षमा धारण की और सभी जीवों के प्रति द्वेष और वैरभाव का त्याग कर दिया, उनसे प्रतिशोध लेने का भाव त्याग दिया तो हमें शांति कब मिलेगी; कल, एक वर्ष बाद या अगले जन्म में?

अरे! कल तो क्या पल की भी देर नहीं लगेगी। क्षमा धारण की तो तत्क्षण, उसी समय शांति मिल जायेगी। और सिर्फ उसी एक पल के लिए नहीं वरन् सदा के लिए हम उस द्वेष की ज्वाला में झुलसने से बच जायेंगे। इसी प्रकार किसी से क्षमा माँगने पर निर्भय होने में हमें वर्षों का समय नहीं लगेगा, हम तत्काल निर्भय हो जायेंगे।

कर्म–बंधन या कर्मों की निर्जरा (कर्मों का खिरना) मात्र एक समय की घटना (one-time event) नहीं है वरन् यह एक सतत प्रक्रिया (continuous process) है। जब तक हम किसी के प्रति वैर–विरोध का भाव अपने चित्त में रखेंगे तब तक निरंतर कर्म का बंधन होता रहेगा और जैसे ही हम तटस्थ (neutral) हो जायेंगे कर्म–बंध रुक जाएगा, इतना ही नहीं निरंतर कर्मों की निर्जरा होती रहेगी।

किसी एक व्यक्ति के प्रति हमारे हृदय में विद्यमान साधारण-सा द्वेषभाव हमें निरंतर पाप बंध का कारण बनता है, तब तक, जब तक कि हम अपने हृदय से उसके प्रति द्वेषभाव निकाल नहीं देते। क्या आप यह कीमत चुकाने के लिए तैयार हैं? क्या उसके प्रति अपने हृदय में द्वेषभाव सँजोये रखना आपके लिए इतना महत्त्वपूर्ण है कि आप निरंतर होने वाले पापबंध की कीमत पर भी इसे जारी रखना चाहते हैं?

अब तक तो आपको इस बात की कल्पना भी नहीं थी, पर क्या यह जानने के बाद अब भी आप अपनी यही प्रवृत्ति जारी रखना चाहेंगे? यदि हाँ, तो सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि – ''**कीमत चुकाने के मामले में बड़े दरियादिल हैं आप!**''

मैं यहाँ एक और बहुत बड़ा रहस्योद्घाटन करना चाहता हूँ– ''**किसी व्यक्ति या वस्तु–विशेष के प्रति राग–द्वेष का परिणाम इस जीव का अपराध नहीं है और न ही मात्र किसी व्यक्ति अथवा वस्तु–विशेष के प्रति अपने चित्त में विद्यमान वैर–विरोध का शमन करना क्षमाभाव है। ये व्यक्ति–विशेष अथवा वस्तु–विशेष तो मात्र मोहरे हैं जो बदलते रहते हैं।**''

वस्तुत: तो हमारी वृत्ति में व्याप्त पर–पदार्थों के प्रति इष्ट–अनिष्ट की परिकल्पना और उनके प्रति कर्त्ता–भोक्तापने का भाव हमारा मूलभूत अपराध है और इनका नष्ट हो जाना तथा अपने मात्र ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव की स्वीकृति उत्तम क्षमा धर्म है।

जब हमारी परिणति में से ही राग–द्वेष अथवा इष्ट–अनिष्ट की परिकल्पना नष्ट हो जायेगी तो हमें किसी व्यक्ति–विशेष के साथ राग–द्वेष होगा ही नहीं, क्रोध होगा ही नहीं।

उक्त परिप्रेक्ष्य में यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि किसी एक के प्रति राग और अन्य के प्रति द्वेष, किसी एक के प्रति क्रोध और अन्य के प्रति प्रेम। अथवा किसी के प्रति क्षमाभाव और अन्य के प्रति वैर का भाव, ये सब वृत्तियाँ हमारे आधे-अधूरेपन की प्रतीक हैं। वस्तुतः ये राग-द्वेष और इन इष्ट-अनिष्ट बुद्धियों का संबंध किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं वरन् हमारी रागी-द्वेषी परिणति से है। व्यक्ति तो हमारी इन वृत्तियों को प्रतिबिम्बित करने के माध्यम हैं।

हमारी इन विकृत वृत्तियों का परिहार **मात्र उत्तम क्षमा ही नहीं वरन् इसी में धर्म के दशों लक्षण समाहित हैं।**

यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं तो मात्र यही करने योग्य है।

तथास्तु!

●

इनमें से भौतिक या आधुनिक विज्ञान ने मूलत: उन रूपी (मूर्तिक) पदार्थों को अपने अन्वेषण का विषय बनाया है जिसे पुद्गल कहते हैं, व इस क्षेत्र में विज्ञान ने असाधारण विशेषज्ञता हासिल की है और इस कार्य के लिए वह अभिनन्दनीय है; परन्तु उस भौतिक-विज्ञान की शोध-खोज का विषय यह आत्मा-परमात्मा मूलत: कभी नहीं रहा और न ही इस विज्ञान ने इस क्षेत्र में कोई विशेष उपलब्धि ही हासिल की है। आत्मा व परमात्मा धर्म व दर्शन के, वीतराग-विज्ञान के विषय रहे हैं।

– क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?, पृष्ठ-6

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

क्योंकि ऐसे कर्म तो कोई करता नहीं है, जिसका फल भोगने की चाहत मन में हो। हमारे कर्म तो ऐसे होते हैं, जिनके फल भोगने से हम किसी भी कीमत पर बचना चाहते हैं और इसी प्रक्रिया में ऐसी किसी सर्वशक्तिमान हस्ती की आवश्यकता महसूस करते हैं जो हमारे स्वयंकृत कर्मों का अभिशाप भुगतने से हमें मुक्त कर दे, चाहे मात्र पूजा-भक्ति या प्रार्थना की कीमत पर या फिर कुछ ले-देकर ही सही।

– क्या मृत्यु अभिशाप है?, पृष्ठ-(xi)

(22)

कर्मों के उदय और प्रभावों की कार्य–प्रणाली

प्रसंगवश मैं यहाँ कर्मों के बंध की, उनके उदय की और कर्मोदय के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले प्रभावों की प्रक्रिया के बारे में संक्षिप्त–सा स्पष्टीकरण आवश्यक समझता हूँ।

सचमुच कर्मों के बंधन, उदय और उनके प्रभावों की प्रक्रिया वैसी नहीं है जैसी हम कल्पना करते हैं। यह बहुत व्यवस्थित, वैज्ञानिक और mathematical है। हमारे जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना के लिए कोई न कोई कर्म–विशेष का उदय जिम्मेदार है। इसका सही स्वरूप जानकर आपको आश्चर्य भी होगा और आप सोचने पर मजबूर भी होंगे।

दो घटनाएँ घटित होती हैं –

एक घटना है – ''आपने 1 करोड़ रुपये कमाए और वे एक करोड़ रुपये 1 माह तक आपके पास रहे, फिर आपको नुकसान हो गया और वे 1 करोड़ रुपये आपके पास से चले गए।'' मैं आपसे पूछता हूँ कि इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में कब–कब कौन–सा कर्मोदय निमित्त बना?

हम सभी मानते हैं कि साधारण–सी तो बात है – हमारे एक करोड़ रुपये कमाने का पुण्य उदय में आया तो हमने एक करोड़ रुपये कमा लिए, फिर एक महीने बाद हमारे एक करोड़ रुपये गँवाने का पाप उदय में आया और हमें एक करोड़ रुपये का नुकसान हो गया।

क्या आप सहमत हैं?

अब दूसरी घटना पर ध्यान दें – एक हेलीकॉप्टर जमीन से 100 मीटर ऊपर उठा, फिर वह 1 घंटे तक ऊपर ही जहाँ का तहाँ स्थिर रहा, 1 इंच भी आगे–पीछे या ऊपर–नीचे नहीं हिला। 1 घंटे बाद वह जमीन पर गिर पड़ा। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में कब कहाँ कितनी शक्ति का व्यय हुआ?

इस प्रश्न का जवाब भी सीधा-सा तो है – जब हेलीकॉप्टर 100 मीटर ऊपर उठा तब उसमें 100 मीटर ऊपर उठने लायक शक्ति का व्यय हुआ, फिर तो वह अपने स्थान पर स्थिर ही रहा, उस 1 घंटे में तो वह हिला तक नहीं, ऐसी स्थिरता के दौरान शक्ति का क्या काम? फिर वह गिर पड़ा तो गिरने के लिए तो शक्ति की आवश्यकता ही नहीं है अथवा कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण की शक्ति काम आई।

क्या आप उक्त उत्तर से सहमत हैं, नहीं ना?

आप में से अधिकतर लोग कहेंगे कि नहीं – **इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में 100 मीटर ऊपर उठने में तो शक्ति का व्यय हुआ ही, साथ ही 1 घंटे तक आकाश में अपने स्थान पर स्थिर रहने के लिए भी शक्ति का व्यय हुआ।** हाँ! गिरने में गुरुत्वाकर्षण काम आया, अन्य किसी शक्ति का व्यय नहीं हुआ।

अब यदि हम पहली और दूसरी, दोनों घटनाओं की तुलना करें तो दोनों ही घटनाओं में 3-3 चरण घटित हुए –

1. पहला चरण – एक करोड़ रुपये कमाना और हेलीकॉप्टर का 100 मीटर ऊपर उठना।

2. दूसरा चरण – 1 माह तक 1 करोड़ रुपये टिकना और एक घंटे तक हेलीकॉप्टर का आकाश में स्थिर रहना।

3. तीसरा चरण – 1 करोड़ रुपये का घाटा हो जाना तथा हेलीकॉप्टर का नीचे गिर जाना।

हमारी व्याख्या में –

पहले चरण में पहली घटना में 1 करोड़ कमाने में पुण्य खर्च हुआ और दूसरी घटना में हेलीकॉप्टर को ऊपर उठने में पेट्रोल खर्च हुआ। इस प्रकार दोनों घटनाएँ समान रहीं।

दूसरे चरण में 1 करोड़ रुपये 1 महीने तक टिकने में तो कोई कर्मोदय काम नहीं आया पर हेलीकॉप्टर को आकाश में टिकने में पेट्रोल खर्च हुआ।

तीसरे चरण में पहली घटना में 1 करोड़ रुपये के नुकसान में तो 1 करोड़ रुपये का घाटा होने का पाप का उदय काम आया, पर हेलीकॉप्टर के गिरने में पेट्रोल काम नहीं आया (गुरुत्वाकर्षण के बल से वह स्वत: गिर गया।)

क्या आपको नहीं लगता है कि पहले के समान दूसरे और तीसरे चरण में भी समानता ही होनी चाहिए?

अब इसे इसप्रकार समझ सकते हैं –

दूसरे चरण में **जिस प्रकार दूसरी घटना में हेलीकॉप्टर को आकाश में टिकने के लिये प्रतिपल पेट्रोल खर्च होता है उसी प्रकार 1 करोड़ रुपये 1 महीने टिकने के लिए प्रतिपल तत्संबंधी पुण्य खर्च होना चाहिए।**

तीसरे चरण में **जिस प्रकार पेट्रोल की सप्लाई रुक गई तो हेलीकॉप्टर नीचे गिर गया। उसी प्रकार बस 1 करोड़ रुपये टिकने संबंधी पुण्य का उदय न रहा तो वे 1 करोड़ रुपये चले गए। इसके लिए पृथक् से किसी पाप के उदय की आवश्यकता नहीं रही। एक पुण्योदय से आये, प्रतिपल नए–नए पुण्योदय से टिके तथा पुण्योदय न रहा तो चले गए। हाँ! उन रुपयों का नुकसान होने के फलस्वरूप जो छोभ (आकुलता, दु:ख) हुआ उसके लिए अन्य असाता वेदनीय कर्म का उदय निमित्त होगा। यदि तत्संबंधी असाता वेदनीय कर्म का उदय नहीं होगा तो नुकसान हो जाने के बावजूद तत्संबंधी पीड़ा नहीं होगी।**

यहाँ यह समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि मात्र कमाने में ही नहीं वरन् कमाए हुए धन को टिकाये रखने के लिए भी प्रतिपल पुण्य खर्च होता है, चाहे हम उस धन का उपभोग करें या न करें। जैसे– यदि आप कर्ज लेते हैं और जब तक आप वह पैसा अपने पास रखते हैं तो उसपर प्रतिपल का ब्याज चढ़ता है, उसी प्रकार इष्ट अथवा अनिष्ट संयोगों को बनाए रखने पर प्रतिपल पुण्य अथवा पाप का व्यय होता है।

वस्तुत: तो उस धन के प्रति स्वामित्व का भाव और तत्संबंधी संतुष्टि ही उस धन का उपभोग ही है। उक्त धन का कोई अन्य उपयोग

करने के लिए (भोगकर आनंदित होने के लिए) तो पृथक् पुण्योदय की आवश्यकता होगी। अब आप समझे कि वह संयोग जिन्हें आप अपना मानते हैं, उनके लिए आप कितनी बड़ी कीमत चुकाते हैं?

यहाँ एक बात और सामने आई कि किसी इष्ट संयोग का वियोग होने के लिए किसी पाप कर्म के उदय की आवश्यकता नहीं है, मात्र इष्ट संयोग संबंधी पुण्य क्षीण हो जाने से उसका वियोग हो जाता है।

हम समझते हैं कि हम जो दो रोटी-दाल खाते हैं, दो कपड़े पहनते हैं बस हमारा तत्-सम्बन्धी का पुण्य ही व्यय होता है, ऐसा नहीं है। जैसे राष्ट्रपति कुछ भी न करे, कहीं भी न जाए, मात्र अपने घर में सोता रहे, तब भी उसके पद के अनुरूप ताम-झाम पर बहुत बड़ा खर्च होता है। इसी प्रकार हम भी किसी से कम नहीं हैं, हमारे प्रत्येक संयोग-वियोग, क्रिया-कलापों और आचरण-व्यवहार पर प्रतिपल अनेकों प्रकार के पुण्य-पाप कर्मों का उदय काम आता है। उक्त उदाहरण से हमें यह समझना चाहिए कि हमारे चित्त में विद्यमान सभी कषायें प्रतिपल हमें कर्मों के बन्धन में निमित्त बनती हैं और कषायों की मन्दता या अभाव कर्मों की निर्जरा में निमित्त बनते हैं। उक्त तथ्य की स्वीकृति हमें हमारे चित्त में क्षमाभाव आदि धारण करने के महत्त्व को स्थापित करेगी।

वह धन-संपत्ति और वे सारे अनुकूल संयोग जैसे- पुरजन, परिजन, मित्र, मकान-जायदाद, रूप-रंग, स्वास्थ्य, यश, नौकर-चाकर, वाहन, अनुकूल शासक, अनुकूल मौसम इत्यादि सभी कुछ आपको यूँ ही बिना कीमत चुकाए नहीं मिले हैं। इनके मिलने और बने रहने में निरंतर आपका पुण्य खर्च हो रहा है, और जैसे ही तत्संबंधी पुण्य न रहेगा ये आपसे छिन जायेंगे।

उक्त कर्मोदय और उसके फल की प्रक्रिया उसी प्रकार की होती है, जैसे कम्प्यूटर में सामान्यजन को एक छोटा-सा दिखने वाला एक्शन सम्पन्न होने के पीछे अनेक प्रक्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। यह बात वे लोग जानते हैं जो कम्प्यूटर के लिए कोडिंग करते हैं। ●

23

धर्म का आश्रय तत्काल फलदायक होता है, कल नहीं

धर्म का फल तत्काल सुख और शान्ति है। ऐसा नहीं है कि हम आज धर्म करें और उसका फल कल या अगले जन्म में मिलेगा।

भाई! **धर्म उधार की वस्तु नहीं है, यह तो तत्काल प्रभावशाली (instant) है। यदि हमें तत्काल शांति न मिले तो समझ लेना चाहिए कि हमने धर्म धारण किया ही नहीं, हम धर्म के नाम पर कुछ और ही कर रहे हैं। ऐसा तो नहीं होता है ना कि हम मिश्री अभी खाएँ और स्वाद कल आये।**

धर्म कोई क्रिया नहीं 'अभिप्राय' है। वस्तु का स्वभाव धर्म है, कहा भी है - "**वत्थु सहावो धम्मो**"**।** वस्तु का स्वभाव है कण-कण की स्वतंत्रता और स्वयं में परिपूर्णता। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य का अकर्त्तापन। प्रत्येक द्रव्य का प्रतिपल का परिणमन सुनिश्चित होना (क्रमबद्ध पर्याय)।

जीव का स्वभाव है ज्ञाता-द्रष्टापन।

जब किसी जीव को उक्त वस्तुस्वरूप स्वीकृत हो जाता है तब उसके अभिप्राय में किसी के प्रति अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का भाव खत्म हो जाता है, इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं रहती, आशा-अपेक्षा, भय और लोभ नहीं रहते हैं। राग-द्वेष का कोई कारण नहीं रहता है, फलस्वरूप वह जीव तत्क्षण अनंत सुखी हो जाता है।

यह एक त्रैकालिक सत्य है कि धर्म धारण करने पर तत्क्षण शान्ति की अनुभूति होती है, यह एक और पैमाना है जिस कसौटी पर कस कर हम सच्चे धर्म की पहचान कर सकते हैं।

हमारी विडंबना यह है कि हमने आज तक धर्म का सच्चा स्वरूप तो जाना-पहचाना नहीं। धर्म के नाम पर हम कपोलकल्पित क्रियाएँ करते रहे। ऐसा करने से हमें सुख तो न मिलना था और न ही मिला वरन् उल्टे आकुलता ही हुई। यह सब देखकर जब अपने कथित ज्ञानी (अज्ञानी) सलाहकारों से चर्चा की तो उन्होंने कह दिया कि आज कष्ट भोगकर धर्म करोगे तो कल उसके फल में सुख मिलेगा। अरे भाई! दो बातें हैं - **एक तो यह कि कष्ट भोगने से आनंद कैसे मिलेगा? और दूसरी यह कि हम अभी आनंद में हैं अब उसे छोड़कर अभी कष्ट भोगें, इस आशा में कि इससे कल आनंद मिलेगा।** यदि ऐसा ही है तो हम तो आनंद में ही हैं, आज का यह आनंद ही क्या बुरा है, इसे ही क्यों छोड़ें?

हमारे चित्त में एक धारणा घर कर गई है कि धर्म तो उधार की वस्तु है। आज धर्म करेंगे तो जाने कब फल मिलेगा। मिलेगा भी या नहीं मिलेगा। कल किसने देखा? कल के लिए मिले आश्वासनों के मामले में हमारा आज तक का अनुभव इतना बुरा है कि हमें इस पर भरोसा ही नहीं। तत्काल जो मिल जाए सो सच्चा। यदि कोई मजबूरी ही न हो तो कल कुछ मिलेगा इस आश्वासन पर हम आज कोई कीमत चुकाने के लिए आसानी से तैयार नहीं होते हैं। **बस इसलिए हम उस कथित-धर्म से भी विमुख होते चले गये। सच्चे धर्म को तो जाना नहीं और कथित-धर्म सुहाया नहीं; इसलिए कथित-धर्म और धर्मात्माओं की ओर वितृष्णा भरी ललचाई नज़रों से ताकते हुए हम धर्म से विमुख ही बने रहे। हम धर्मात्मा न हो पाए वरन् धर्मभीरु ही बने रहे।**

धर्म और धर्म की क्रियाएँ कष्टकर होती हैं, हमारी यह धारणा भी अकारण नहीं है।

आज मात्र यह कह देने से काम नहीं चलेगा कि धर्म और धार्मिक-क्रियाएँ वर्तमान में भी आनंददायक ही होनी चाहिए, कष्टकर नहीं। हमें यह बात तर्क और युक्ति के साथ समझनी-समझानी होगी। इसकी विस्तृत चर्चा तो हम अन्यत्र करेंगे, पर अति संक्षेप में इसकी चर्चा हम यहाँ भी कर लेते हैं।

यह एक तथ्य है कि स्वभाव कभी कष्टकर नहीं होता है और इसलिए स्वाभाविक क्रियाएँ भी कष्टदायक नहीं होती हैं। चूँकि धर्म आत्मा का स्वभाव है और धार्मिक क्रियाएँ (जीवन में धर्म प्रकट होने पर बाह्य आचरण में स्वत: प्रकट होने वाली क्रियाएँ) स्वाभाविक क्रियाएँ हैं इसलिए वे कष्टदायक नहीं होती हैं। यदि किसी को धर्म कष्टदायक लगता है और धार्मिक क्रियाएँ कष्ट भासित होती हैं तो समझ लेना चाहिए कि वह धर्म नहीं धर्म का भ्रम है।

हम सभी जीव हैं, आत्मा हैं और इसलिए आत्मा का धर्म हमारा धर्म है। यदि हमें धर्मात्मा होना है तो शुरुआत आत्मा से ही होनी चाहिए। जब यह जीव (हम) आत्मा का (अपना) स्वरूप जान और समझ कर अपने स्वरूप में स्थित होता है अथवा स्वरूप में स्थित होने का प्रयास करता है तो चूँकि हमारी देह के साथ हमारा (आत्मा का) एकक्षेत्रावगाह संबंध है इसलिए उस दौरान हमारा शरीर जिस प्रकार परिणमित होता है, शरीर के उस परिणमन को, शरीर की उन क्रियाओं को व्यवहार से धर्म कहा जाता है।

बाहरी तौर पर चूँकि किसी को उक्त धर्मात्मा जीव की अंतरंग परिणति तो दिखाई देती नहीं है, सिर्फ बाहरी व्यवहार ही दिखाई देता है, इसलिए धर्म से अपरिचित अज्ञानी लोग सिर्फ इन बाहरी क्रियाओं को ही धर्म मान बैठते हैं। ये तो ऐसा है कि ऐसे नन्हे बालक जो शादी का वास्तविक स्वरूप नहीं जानते हैं, उन्हें शादी का भाव-भासन तो है नहीं। वे तो यही देखते हैं कि शादी में घर में

सजावट होती है, मेहमान आते हैं। सभी लोग बनाव व श्रृंगार करते हैं, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं, मिठाइयाँ खाते हैं, भोज होते हैं। शहनाई और बैंड-बाजे बजते हैं। बारात आती या जाती है, नाच-गाने होते हैं, इत्यादि।

ऐसे बालक जब कभी, कहीं ऐसी घटनाओं को घटित होता देखते हैं तो जान लेते हैं कि यहाँ शादी हो रही है। यदि उन बालकों से पूछा जाए कि शादी किसे कहते हैं तो तब भी वे उपरोक्त सभी बातें बता देंगे। उन अबोध बालकों के लिए शादी इससे अधिक और कुछ भी नहीं है। हाँ! सचमुच।

अब मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ - ऊपर वर्णित सभी क्रियाकलाप हों पर सात फेरे न हों, दुल्हन की विदाई न हो, वह न हो जो सच्चे अर्थों में शादी होती है तो क्या वे क्रियाकलाप शादी कहलायेंगे, नहीं ना? यह सिर्फ तमाशा कहलायेगा।

यद्यपि हम समझदार लोग भी कहीं पर इस प्रकार के क्रियाकलाप होते देखेंगे तो बिना किसी गहराई में जाए यही कहेंगे और मानेंगे कि शादी हो रही है, क्योंकि सामान्यत: इस प्रकार के क्रियाकलाप शादी में ही होते हैं।

एक बात और! कदाचित् शादी करने वाले पात्र आर्थिक रूप से सक्षम न हों अथवा आदर्शवादी हों, अथवा उनके यहाँ कोई शोक प्रसंग घटित हो गया हो इसलिए उपरोक्त सारे क्रियाकलाप न हों, बस फेरे हो जाएँ, वह सम्पन्न हो जाए जो असली शादी है, विदाई हो जाए, जिसे ज्ञानी समझदार लोग शादी जानते, मानते और कहते हैं, तो वह शादी कहलाएगी या नहीं; कहलाएगी ना?

ऐसे में यदि बच्चों से कहा जाए कि शादी हो गई तो क्या वे मान जाएँगे? कभी नहीं! वे कहेंगे कि जब कुछ हुआ ही नहीं तो शादी कैसे हो गई?

धर्म के संबंध में बालकवत भोले हम लोग भी ऐसा ही करते हैं। किसी धर्मात्मा के अंतर में धर्म–परिणति प्रकट हो गई हो पर बाहरी तौर पर प्रकट व्यवहार में उसका कोई रूप, कोई क्रिया दिखाई न दे तो हम उन्हें धर्मात्मा स्वीकार करने को तैयार ही नहीं होते हैं। इसके उलट यदि बाहरी तौर पर धर्मात्माओं के समान क्रियाएँ, आचरण और व्यवहार दिखाई दे तो उनकी अंतरंग–परिणति से बेखबर हम उनके धर्मात्मा होने का भ्रम पाल लेते हैं।

हम देखते हैं कि जब परिवार में शादी होती है तो सभी लोग न दिन देखते हैं न रात, कभी परिश्रम न करने वाले लोग भी कठोर परिश्रम करते हैं, भाग–दौड़ कर सब काम करते हैं, व्यवस्थाएँ जुटाते हैं, हर्षोल्लासपूर्वक सभी मेहमानों का स्वागत करते हैं। थकावट की परवाह नहीं करते हैं, आराम की चिंता नहीं करते। सामान्य दिनों में यह सब पीड़ादायक और थकाने वाला लगने वाला काम करते हुए उन्हें पीड़ा नहीं होती वरन् आनंद की अनुभूति होती है। अन्य अवसर पर तो ये लोग काम करते ही नहीं अथवा यदि करना ही पड़ जाए तो उसे महासंकट मानकर करते हैं, उन्हें प्रसन्नता तो होती ही नहीं, कदाचित् पीड़ा भी हो।

अब यदि हम और वे सब उत्साहपूर्वक, श्रम करते हुए सभी अरुचिकर और थकाने वाले पीड़ादायक कार्य सम्पन्न करते हुए कष्ट नहीं वरन् आनंद की अनुभूति कर रहे थे। अब हम भोजन करने बैठे हैं और अपनी पसंद के व्यंजनों का सेवन करते हुए आनंदित हो रहे हैं अथवा रंगारंग कार्यक्रमों का आनंद ले रहे हैं कि तभी हमें शादी में विघ्न पड़ने का कोई समाचार मिले तो क्या हमारा आनंद कायम रह पायेगा, क्या हम अब भी वहाँ बैठे हुए कार्यक्रम सम्पन्न करते रहेंगे, क्या अब उस कथित आनंद के माहौल में बैठे हुए हम आकुलित नहीं होंगे? क्या हमारे पसंदीदा आनंदित करने वाले

भोज्य पदार्थ या रंगारंग-कार्यक्रम हमें अब भी आनंददायक लगेंगे, क्या अब वे भारभूत और पीड़ादायक से नहीं लगने लगेंगे?

स्पष्ट है कि अंतरंग में विवाह के सम्पन्न होने के आनंद का आश्रय था तो सामान्यतः कष्टकर माने जाने वाले क्रियाकलापों में भी आनंद की अनुभूति हो रही थी और अब अंतरंग में उस आनंददायी विवाह का आश्रय नहीं रहा तो सामान्यत: आनंदमयी लगने वाले क्रियाकलाप कष्टकर प्रतीत होने लगे।

ठीक इसी प्रकार **जब सामान्यजन धर्म-परिणति के धारक धर्मात्मा जीवों का बाह्य आचरण देखते हैं तो अंतरंग परिणति से अनभिज्ञ अज्ञानी जीव उस भोले बालक के समान इन बाह्य क्रियाओं और आचरण को ही धर्म मान बैठते हैं। वे जब ऐसे बाह्य आचरण के धारी किसी जीव को देखते हैं तो उसे धर्मात्मा मान लेते हैं।**

हमने सच्चे धर्म को तो जाना-समझा नहीं, अंतरंग में धर्म-परिणति विद्यमान होने के साथ बाह्य में दिखाई देने वाली कुछ विशेष क्रियाओं को धर्म मान कर सम्पन्न कर लिया तो हम गाफिल (careless) हो गये कि हमने तो धर्म पा लिया है, हम धर्मात्मा हो गए हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि सच्चे धर्म की खोज भी बंद हो गई। इस प्रकार हम यह दुर्लभ मानव-जन्म पाकर, जैन कुल और जिनधर्म पाकर भी हम कोरे के कोरे रह जाते हैं और उपलब्धि-विहीन (without achievement) रहकर यह देह त्याग देते हैं, न जाने कब तक संसार में परिभ्रमण करने के लिए।

यदि हम अपने कथित धार्मिक आचरण और धर्म की कथित क्रियाओं को इस कसौटी पर कसकर देखें-परखें कि इनसे तत्काल शांति और आनंद मिलता है या नहीं। यदि नहीं, यदि इससे आकुलता और वेदना होती है तो निश्चित ही इन क्रियाओं के पीछे अंतरंग धर्म-

परिणति का आश्रय नहीं है, तब यह बाह्य आचरण धर्म नहीं हो सकता है। यदि हम यह समझ पाए तो हम धर्माभिलाषियों की सच्चे धर्म की खोज तब तक जारी रहेगी जब तक हमें सच्चे धर्म की उपलब्धि न हो जाए। यदि धर्म की खोज जारी रहेगी तो एक सच्चे धर्म की प्राप्ति भी होगी, होगी–होगी और निश्चित होगी। कहा भी है ना कि – 'क्यों ना हुईऐ प्रापति, अवश्य हुईऐ प्रापति।'

तब हम इस मनुष्य–पर्याय से खाली हाथ चले जाने पर विवश नहीं होंगे। हम अपने इसी जीवन में अपने लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर लेंगे।

क्षमावाणी मात्र क्षमा माँगने और क्षमा करने का पर्व नहीं है बल्कि **यह तो कषाय के त्याग का पर्व है। वाणी की क्षमा तो कषाय के अभाव का परिणाम है, कषाय के अभाव का बाह्य प्रदर्शन है।** दस दिनों तक धर्म–आराधना के फलस्वरूप कषायों में आई मंदता वाणी में क्षमा के रूप में प्रकट हो पड़ी।

कषायों का सम्बन्ध तो स्वयं से है किसी पर से नहीं, कषाय आत्मा में ही उत्पन्न होती है और आत्मलीनता से नष्ट होती है। पर जब हम कषाय करते हैं तो क्रोध, मान, मायाचार और लोभ भरे व्यवहार के माध्यम से हम अन्यों के साथ जुड़ जाते हैं, उनके और हमारे हानि–लाभ तथा हित–अहित जुड़ जाते हैं और इसीलिये कषाय की मंदता के इस प्रसंग पर हम क्षमा करके और क्षमा माँग कर अन्य जीवों के साथ इस कषायजनित संपर्क को तोड़ देना चाहते हैं।

तथास्तु!

●

24

उत्तम क्षमा

निज आत्मा को भूल जाना क्रोध है,
अन्य को ना भूल पाना क्रोध है।
स्वतंत्र हैं सब द्रव्य जग में, अन्य के कर्त्ता नहीं,
किसी को भी अन्य का कर्त्ता बताना क्रोध है।।

दृष्टि को पर से हटा, स्थापना निज आत्म में,
अनंत गुण पर्याय वाला स्वयं ही परमात्म मैं।
मैं नहीं कर्त्ता किसी का ना किसी का कर्म मैं,
जानकर निर्लिप्त होना उत्तम क्षमा है धर्म है।।

पद्यों का भावार्थ –

अनादिकाल से हमने अपने आत्मा की सुध नहीं ली, यही हमारा आत्मा (अपने–आप) के प्रति अनन्तानुबन्धी क्रोध है।

हम पर पदार्थों को अपना कर्त्ता (अनिष्ट–कर्त्ता) मानते रहे और इसलिये उनपर क्रोध करते रहे, उन्हें भूल नहीं सके, उनसे बदला लेने का संकल्प करते रहे, उनके प्रति हमारी यही कर्त्ता–बुद्धि उनकी स्वतंत्रता का घात है और हमारा अनन्तानुबन्धी क्रोध है।

अनन्त गुणों के स्वामी इस आत्मा का (अपना) अकर्त्ता–स्वभाव पहचानकर पर–पदार्थों से निरपेक्ष हो जाना, उनसे अलिप्त हो जाना उत्तम क्षमा धर्म है।

क्षमा आत्मा का (हमारा) धर्म है, यह हमारे लिए है, क्षमा को अपना कर, धारण कर हम स्वयं सुखी होते हैं। अन्य को क्षमा करके

हम निर्भार हो जाते हैं और क्षमा माँग कर निर्भय।

सबको क्षमा कर देने से हम बदला लेने के भार से मुक्त होकर निर्भार हो जाते हैं, तत्संबंधी आकुलता से बच जाते हैं। सबसे क्षमा माँगने, पा लेने से शत्रु–शत्रुता खत्म हो जाती है, कोई शत्रु न रहने से हम निर्भय हो जाते हैं।

क्षमा के अभाव रूप क्रोध और वैर किसी अन्य को नहीं वरन् हमें ही अशांत करता है, हमें ही जलाता और तड़पाता है। जिस प्रकार जलते हुए कोयले किसी अन्य को तपायें या न तपायें स्वयं तो जलकर राख हो ही जाते हैं।

हमारी कषाय या हम स्वयं किसी अन्य का तो कुछ बिगाड़ ही नहीं सकते हैं, कुछ भी भला या बुरा कर ही नहीं सकते हैं। उसका भला या बुरा होना तो उसके कर्म के उदय के आधीन है। यदि उसके शुभकर्मों का उदय हो तो हम उसका बुरा कैसे कर सकते हैं? यदि हम ऐसा कर पाए तो उसके शुभकर्मों का क्या होगा?

क्या उसके कृत्य निष्फल नहीं हो जायेंगे?

यदि ऐसा हो सके तो क्या यह वस्तुस्वभाव के विरुद्ध नहीं होगा? क्या वस्तुस्वभाव में ऐसी अनीति संभव है?

नहीं, कदापि नहीं!

इसप्रकार हम पाते हैं कि **क्षमा धारण करना स्वयं हमारे लिए हितकर एवं सुखकर है। यह हमारे हृदय में धधक रही क्रोध की ज्वाला को शांतकर हमें ही उसके आताप (तपन) से बचायेगी।**

हमारा क्षमा धारण करना, किसी अन्य के ऊपर हमारा अहसान या उपकार नहीं है।

तब क्यों नहीं हम सभी क्षमा धारण करें?

क्षमावाणी

त्यागना क्रोधादि का ही नाम है उत्तमक्षमा,
धर्म की आराधना का परिणाम है उत्तम क्षमा।
धार मन में बैर अरु क्रोधादि कर जग में भ्रमा,
निराकुल हुआ मैं आज धार–उर उत्तम क्षमा।।

उपकार मेरा आत्म पर जगत के सब जीव पर,
क्रोध–बैर परित्याग कर समभाव चित्त में धार कर।
क्षमा मैं करता सभी को अपने लिए माँगूँ क्षमा,
यह धर्म–धारण स्वयं का यह नहीं कोई याचना।।

पदों का अर्थ –

क्रोधादि (क्रोध, मान, माया, लोभ) कषायों का त्याग करना उत्तम क्षमा धर्म है। यह धर्म की आराधना का स्वाभाविक परिणाम है। आज तक यह जीव (मैं) उक्त कषायों के वशीभूत होकर अन्य जीवों के प्रति क्रोध और वैरभाव धारण करके संसार में भ्रमता रहा, पर आज मैं अपने हृदय में उत्तम क्षमा धारण करके निराकुल हुआ हूँ।

यही मेरा अपनी आत्मा पर (स्वयं मुझ पर) और यही जगत के समस्त प्राणियों पर उपकार है कि आज मैं क्रोधादि कषायों का त्याग करके व अपने चित्त में समता भाव धारण करके सबके प्रति स्वयं क्षमा भाव धारण करता हूँ और सभी से क्षमा–याचना करता हूँ। मेरा यह कृत्य मेरी अन्तरंग धर्म–धारण की प्रक्रिया है, जगत से कोई याचना नहीं है।

क्षमा करने का तात्पर्य है भविष्य में दुष्कृत्य न करने का संकल्प और क्षमा माँगने का तात्पर्य है पूर्वकृत दुष्कृत्यों के प्रति प्रायश्चित्त।

क्षमा करने से हम अपनी कषायों को क्रियान्वित (execute) करने के अनन्त भार से मुक्त होकर निर्भार हो जाते हैं और क्षमा माँगने से हम सामने वाले की ओर से अपने अनिष्ट की आशंका का त्यागकर निर्भय हो जाते हैं।

उक्त दोनों ही परिणाम किसी और के नहीं स्वयं हमारे अपने हित में हैं।

क्षमा करना और क्षमा माँगना कोई लेन–देन की क्रिया नहीं है, इसमें कई अलग–अलग लोग शामिल नहीं हैं। यह आत्मा का धर्म है। धर्म स्वाधीन होता है इसमें किसी पर निर्भरता की आवश्यकता नहीं। धर्म की आराधना हमने की है, कषायों की मंदता हमें हुई है और इसलिये क्षमाभाव हमारे चित्त में प्रकट हुआ है। यदि कोई क्षमा न माँगे तो क्या हम क्षमाभाव धारण ही नहीं कर सकेंगे? या कोई हमें क्षमा ही न करे तो क्या निजात्मतत्त्व का आश्रय हमें निर्भार करने में समर्थ नहीं होगा?

हम सभी जीव उत्तम क्षमादि धर्म के दश लक्षणों का स्वरूप समझकर इन्हें धारण करें और परम सुखी हों यही कामना है।

❑ ❑ ❑

आखिर हम मौत से डरते क्यों हैं?

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

अज्ञात के प्रति भय मानव की सहज प्रवृत्ति है। मृत्यु के बाद का हमारा भविष्य हमें ज्ञात नहीं। मरने के बाद हमारा अस्तित्त्व भी रहेगा या नहीं हमें भरोसा नहीं। बस यही कारण है कि हम मरना नहीं चाहते। क्योंकि हम नष्ट नहीं होना चाहते हैं।

यदि हमें आत्मा की अमरता का, अनादि–अनंतता का भरोसा हो जाए तो मृत्यु का भय ना रहे। – क्या मृत्यु अभिशाप है?, पृष्ठ–58

लेखक के आगामी प्रकाशन की विषय वस्तु

''धर्म क्या, क्यों, कैसे और किसके लिए''

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

दुनिया में मात्र एक विश्वास ऐसा है जिससे दुनिया का प्रत्येक मानव निर्विवाद रूप से सहमत है, वह विश्वास है कि – ''धर्म दुनिया में सर्वोत्कृष्ट है।''

विडंबना ही है कि आप चिराग लेकर ढूँढने को निकल जाइए, दुनिया के किसी भी सख्स के पास आपको इस प्रश्न का संतोषजनक जवाब नहीं मिलेगा कि – **धर्म क्या, क्यों, कैसे और किसके लिए ?**

कोई हमसे पूछे –

धर्म क्या है ?	–	**''पता नहीं''**
धर्म क्यों ?	–	**''यूं ही''**
धर्म कैसे ?	–	**''नहीं जानते''**
धर्म किसके लिए ?	–	**''सोचा नहीं''**

ऐसे हालात में आपको क्या लगता है, क्या हम बेचारे नहीं ?

''धर्म क्या है'', इस विषय में दुनिया के कोई भी दो मानव एक दूसरे से पूरी तरह सहमत नहीं हैं। धर्म के विषय में सभी के अपने-अपने विश्वास हैं, अपनी-अपनी धारणाएँ और मिथक हैं।

धर्म का पालन करने के लिए सबके पास अपने-अपने कारण हैं और सबकी अपनी-अपनी विधियाँ भी हैं। अपने-अपने सीमित दायरे में रहते हुए, जगत में प्रचलित अन्य अनेकों तर्कसंगत मान्यताओं से अनभिज्ञ, बिना प्रमाणिकता जाँचे-परखे, बिना किसी विशिष्ट अनुभव के, **बिना किसी आधार के सभी यह मानते हैं कि वही और सिर्फ वही सर्वश्रेष्ठ है।**

धर्म और धार्मिक आचरण व व्यवहार के पीछे प्रत्येक व्यक्ति की सोच अत्यंत साधारण और अल्पकालिक, क्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति से लेकर अनंतकाल तक के किसी महान लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य को लिए हो सकता है।

धर्म के पास उक्त सभी आवश्यकताओं का समाधान होना भी चाहिए, अन्यथा कोई कैसे पूरी तरह धार्मिक हो सकता है, रह सकता है।

यदि धर्म के दायरे में रहकर, धर्म का अनुकरण करते हुए धार्मिक विधि से किसी का जीवन सम्पूर्ण नहीं बनता है, उसके जीवन में आधा-अधूरापन रह जाता है तो मजबूरी में उसे कोई और मार्ग खोजना होगा, किसी अन्य की गोद में बैठना होगा। ऐसे में उसे धर्म से विमुख करने का उत्तरदायी कौन होगा? धर्म ही न, धर्म का अधूरापन और अक्षमता ही न?

कहने को तो हम मानते हैं कि धर्म ही कल्याणकारी है पर हम यह नहीं जानते हैं कि हमारा कल्याण किस में है, कल्याण का स्वरूप क्या है, आखिर कल्याण कहते किसे हैं और धर्म किस प्रकार हमारे लिए कल्याणकारी है।

हम नहीं जानते हैं कि धर्म क्या, क्यों, कैसे और किसके लिए है।

एक बात और - **धर्म के साथ भगवान का चोली-दामन का साथ है। जहाँ-जहाँ किसी भी प्रकार के धर्म की चर्चा है वहाँ-वहाँ कोई न कोई भगवान अवश्य विद्यमान है।**

हम भी कितने भोले हैं, **हम भगवान के व्यक्तित्व और व्यवहार में वे आदर्श, वे गुण, वह चरित्र, वैसा आचरण और व्यवहार तो खोजते ही नहीं हैं जिन्हें हम स्वयं आदर्श मानते हैं और हम जैसे सामान्य मानव स्वयं जैसा बनना चाहते हैं,** जो हम अपने आचरण, व्यवहार और जीवन में पाना चाहते हैं। **हम तो भगवान के उन कथानकों और क्रियाकलापों की ही चर्चा करते हैं जिनमें वे हमारी वर्तमान दशा के समान ही अत्यंत सामान्य, साधारण, निर्बल, साधनहीन, किस्मत के मारे, बेचारे, अधम और अक्षम से व्यक्ति की भूमिका में दिखाई देते हैं।**

ज़रा विचार तो कीजिये कि - **भगवान हमारे आदर्श हैं या हम भगवान के आदर्श हैं। हमें भगवान जैसा बनना है या भगवान को हम जैसा बनाना है?**

हमारे जीवन में व्याप्त उक्त सभी विसंगतियों को सुलझाने के लिए, धर्म और भगवान के संबंध में आगमोक्त एवं तर्कसंगत जानकारी प्राप्त करने के लिए और इन विषयों संबंधी अपने सभी प्रश्नों के जवाब पाने के लिए पढ़ें-

लेखक परमात्मप्रकाश भारिल्ल की आगामी कृति -

''धर्म क्या, क्यों, कैसे और किसके लिए''

लेखक की अन्य पुस्तक 'अन्तर्द्वन्द्व' से –

❖ हमारा जीवन मात्र एक अनगढ़े पत्थर की तरह बेडोल न रह जाए, बल्कि एक आदर्श शिल्प बन सके – इसके लिए आवश्यकता है एक अत्यन्त ही कुशल शिल्पी की, और अपने स्वयं के लिए वह 'शिल्पी' कोई अन्य नहीं हो सकता; क्योंकि शिल्प में जो कुछ भी अभिव्यक्त होता है, वह शिल्पी का अपना दृष्टिकोण होता है, उसकी अपनी परिकल्पना होती है। हमें अपने–आपको जिस रूप में ढालना है वह किसी अन्य की परिकल्पना नहीं, वरन् हमारा अपना स्वप्न है, हमारा अपना स्वप्न होना चाहिए और इसलिए हमें अपना शिल्पी स्वयं ही बनना होगा। – पृष्ठ–(x)

❖ **यदि हम किसी अन्य के द्वारा निर्मित किसी भी कृति को पसन्द नहीं करते तो फिर भला हम अपने–आपको गढ़े जाने के लिए किसके हवाले कर दें? इसलिए यदि हम अपने जीवन को अपनी स्वयं की परिकल्पना के अनुरूप एक आदर्श शिल्प बनाना चाहते हैं तो हमें अपना शिल्पी स्वयं ही बनना होगा।** – पृष्ठ–(xi)

❖ अपने विचारों के अनुरूप अपने जीवन को ढालना कोई एक दिन का काम नहीं है, वरन् यह एक सतत प्रक्रिया है। – पृष्ठ–(xii)

❖ **जब विचार ही आकार नहीं ले पाएँगे तो जीवन कैसे आकार लेगा ?** – पृष्ठ–(xii)

❖ कौन कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं अपने साथ ले जाने के लिए? हाँ ! ले जाने लायक कुछ नहीं, पर ले जाने के लिए तो है न! जीवन भर किये गये पापों का बोझ। – पृष्ठ–5

❖ **जिस पैसे के लिए हम अपना सारा जीवन झोंक डालते हैं, क्या वह सम्पूर्ण पैसा देकर भी हम पुनः जीवन का एक क्षण भी खरीद सकते हैं? नहीं! तब हम अपना यह जीवन धनोपार्जन में कैसे झोंक सकते हैं ?** – पृष्ठ–18

❖ जीवन तो जीना ही था, यदि विचारपूर्वक जिया होता तो यही जीवन, जीवन–मरण का अन्त करनेवाला साबित होता। – पृष्ठ–25

❖ **कैसी विडंबना है कि जो जीवन इतना अनिश्चित है; उसके बारे में मैं कितना आश्वस्त हूँ व जो मृत्यु इतनी निश्चित है; उसकी मुझे कोई परवाह ही नहीं।** – पृष्ठ–33

लेखक की अन्य पुस्तक 'क्या मृत्यु अभिशाप है?' से –

- **(मृत्यु की स्थिति में) हमें न मिलने का दुःख नहीं होता, हमें अफ़सोस होता है न मिल सकने का। यहाँ हमारी समस्या विरह नहीं है, यहाँ हमारी व्यथा मजबूरी है, हमारा असहायपना है।** – पृष्ठ–5
- (मृत्यु से डर क्यों?) मृत्यु के बाद का जीवन हमारी नजरों से ओझल रहता है। अरे! नजरों से क्या, कल्पना से भी ओझल रहता है। मृत्यु के बाद हमारे पास भविष्य की कोई परिकल्पना नहीं होती, और तो और, भविष्य है भी या नहीं, इसके बारे में भी हम सशंकित ही रहते हैं। – पृष्ठ–6
- **हम धर्मभीरु (धर्म से डरने वाले) हैं, धर्मात्मा नहीं। धर्म के पालक नहीं, धार्मिक नहीं।** – पृष्ठ–8
- जहाँ हमें वस्तु स्वरूप में परिवर्तन करने की तनिक–सी गुंजाइश दिखाई देती है वहाँ हम अनंत संभावनाओं की तलाश करने लगते हैं। – पृष्ठ–11
- **मृत्यु के प्रति हमारी हिचक का एक बड़ा कारण है हमारे कामों का अधूरा रहना। यदि इस जीवन के प्रति हमारे सारे कर्त्तव्य पूरे हो गए हैं और अब कुछ करना शेष नहीं रह गया है तो मौत के प्रति हमारा भय, अनिच्छा, हिचक और मौत को टालने की हमारी वृत्ति मिट जाएगी। आखिर हम जैसे जिम्मेदार लोग अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह किये बिना मरने की सोच भी कैसे सकते हैं?** – पृष्ठ–30
- अपनी कमजोरियों को छुपाने में हम इतने माहिर हैं कि उन्हें अच्छे–अच्छे नाम दे डालते हैं। – पृष्ठ–31
- **सचमुच तो मृत्यु के प्रति हमारे अंदर गहरा बैठा डर ही पुकार–पुकार कर कहता है कि मैं मृत्यु से नहीं डरता।** – पृष्ठ–32
- (जिन्हें मरने की फुर्सत नहीं) जिस दिन मौत आएगी तो वह आपकी फुर्सत का इंतजार नहीं करेगी कि आपको अभी मरने की फुर्सत है या नहीं। वह तो अपना काम पूरा कर ही लेगी, आपके काम चाहे पूरे हुए हों या नहीं। – पृष्ठ–32
- **इस प्रकार अपने–आपको झोंक कर हम संसार का विकास करते हैं व अपने लिए संसार का विस्तार करते हैं।** – पृष्ठ–34

लेखक की अन्य पुस्तक
'क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?' से–

❖ अपना यह केस विज्ञान की अदालत को सुपुर्द करने से पहले एक बार हम विज्ञान से तो पूँछ लें कि क्या वे ऐसा करने के लिए सहमत हैं? – पृष्ठ–(vi)

❖ **........तो क्या विज्ञान द्वारा पुष्टि के अभाव में हम धर्म को ही त्याग देंगे? ऐसा करके क्या हम अपना घोर अहित नहीं कर लेंगे?** – पृष्ठ–(vi)

❖ ....जबकि विज्ञान की दृष्टि में आत्मा का अस्तित्त्व ही संदिग्ध है। – पृष्ठ–(viii)

❖ **आज मैं भौतिक विज्ञान की कथित अदालत को यह चुनौती देता हूँ कि धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मान्यताओं के बारे में विचार करना व उसको सही या गलत करार देना उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं है।** – पृष्ठ–5

❖ आँख का कोई डॉक्टर आँख के बारे में चाहे कितनी ही बड़ी हस्ती (authority) क्यों न हो, हृदय रोग के बारे में उसकी राय क्या महत्त्व रखती है? – पृष्ठ–6

❖ **इस प्रकार मैं कहता हूँ कि आधुनिक भौतिक–विज्ञान को कोई अधिकार नहीं कि वह आत्मा–परमात्मा पर अनुसंधान करने वाले धर्म, वीतराग–विज्ञान के बारे में कोई टिप्पणी करे।** – पृष्ठ–6

❖ ....तब फिर क्यों विज्ञान पर फ़िदा हुए जा रहे हैं? वह भी तो ऐसा ही है। कभी कुछ कहता है कभी कुछ। आज कुछ कहता है, कल कुछ और। अरे आज ही, एक ही दिन एक वैज्ञानिक कुछ कहता है, दूसरा कुछ और। – पृष्ठ–7

❖ **इस बात की भी क्या गारंटी है कि आज जो कहा जा रहा है, वह भी अंतिम सत्य है।** – पृष्ठ–7

❖ ......वरन् यह व्यक्तियों या सरकारों द्वारा शुद्ध आर्थिक या राजनैतिक फायदे के लिए अध्ययन है और इसलिए विज्ञान की शोध–खोज के नाम पर जो तथ्य हमारे सामने आते हैं, वे सदा ही शुद्ध नहीं, रंजित हुआ करते हैं। – पृष्ठ–9

❖ **विज्ञान आज तक आत्मा के अस्तित्व को नकार नहीं सका, और न ही इस संबंध में कोई ठोस विचार ही प्रस्तुत कर सका है। इसका तात्पर्य है कि विज्ञान आत्मा के संबंध में अज्ञानी है और किसी अज्ञानी के विचारों का क्या महत्त्व?** – पृष्ठ–11

❖ ......यह यथार्थ है कि विज्ञान व वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण एक संकुचित दृष्टिकोण है, क्योंकि विज्ञान की प्राथमिकताएँ सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक नहीं हैं। – पृष्ठ–14

इसी पुस्तक में से -

➤ साहस और वीरता की ही तरह क्षमाभाव भी एक चारित्रिक गुण है, यह धारण करने की वस्तु है मात्र प्रदर्शन की नहीं। (पृष्ठ-22)

➤ **वस्तुतः तो इस तथ्य और सत्य की स्वीकृति ही उत्तमक्षमा धर्म है कि कोई किसी का कर्ता है ही नहीं इसलिए कोई मेरे प्रति कोई अपराध करता ही नहीं है, कर ही नहीं सकता है और इसी तरह मैं भी किसी को दण्डित भी नहीं कर सकता हूँ। ऐसी श्रद्धा होने पर परिणति में स्वतः ही साम्यभाव स्थापित हो जाता है।** (पृष्ठ-25)

➤ आज भय मानवता की सबसे बड़ी समस्या है, अन्य किसी भी समस्या से बड़ी और विकराल। तो हमारा भय दूर करके हमें निर्भय करने वाली क्षमा हमारे लिए वरदान हुई या अभिशाप? (पृष्ठ-30)

➤ **शत्रुता नष्ट करने के समान कोई रणनीति नहीं हो सकती और इसका दूसरा कोई विकल्प (alternate) नहीं हो सकता है। बस एक ही रास्ता है – क्षमा।** (पृष्ठ-34)

➤ एक क्षमा सारे जगत के सारे के सारे समीकरणों को मानवता के हित में बदल डालने में सक्षम है। (पृष्ठ-34)

➤ **क्षमा मात्र एकमुखी प्रक्रिया नहीं है वरन् यह एक ऐसी दोमुखी प्रक्रिया है जो एक ही जीव के अन्तरंग में एक साथ घटित होती है। इस प्रक्रिया में क्षमा करना और क्षमा माँगना दोनों शामिल हैं।** (पृष्ठ-39)

➤ हम अपने लिए माफी चाहते हैं पर हम माफी माँगना नहीं चाहते हैं। दूसरी ओर हम चाहते हैं कि लोग हमसे माफी माँगें पर हम किसी को माफ़ करना नहीं चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हम माफी न माँगे और वे हमें माफ़ कर दें तथा दूसरे हमसे माफी माँगें और फिर भी हम उन्हें माफ़ न करें। क्या यह विचित्र नहीं है? (पृष्ठ-43)

➤ **वस्तुतः क्षमा करना और क्षमा माँगना ये दोनों पृथक-पृथक क्रियाएँ हैं ही नहीं। ये तो एक ही क्षमाभाव के दो अलग-अलग नाम हैं।** (पृष्ठ-50)

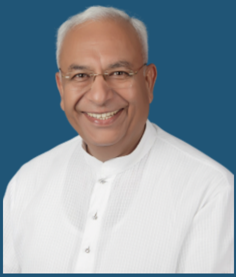

तार्किक शैली के आध्यात्मिक–व्याख्याता श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल को कठिनतम विषयवस्तु को अत्यंत सरलता पूर्वक पाठकों और श्रोताओं को हृदयंगम करा देने में महारत हासिल है। वे किसी भी विषय के उन पहलुओं को उजागर करते हैं, जिनकी ओर सामान्यतः किसी का ध्यान ही नहीं जाता।

प्राचीन दार्शनिक सन्दर्भों की आधुनिक शैली में तार्किक व्याख्या करके, उसे पाठकों व श्रोताओं से स्वीकृत करवा लेना आपकी विशेषता है।

आप गहन–चिंतक हैं और जैनधर्म तथा अध्यात्म के साथ किसी भी नैतिक और सामाजिक विषय पर, उपयुक्त आदर्श जीवनशैली एवं जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आपके युक्तियुक्त, तार्किक विचार जनसामान्य के लिए अत्यंत उपादेय हैं।

कुशल वक्ता के अतिरिक्त आप एक सिद्धहस्त लेखक, निबंधकार, कथाकार, दक्ष कवि, सफल प्रशिक्षक, शिक्षक एवं जैन पत्रकार हैं।

पाक्षिक पत्र 'जैन–पथप्रदर्शक' के आप सम्पादक हैं।

अपने रत्न–व्यवसाय के सिलसिले में अनेकों विदेश यात्राएँ करने के अलावा **आप प्रवचनार्थ भी देश–विदेश की यात्राएँ करते रहते हैं।**

उसी माहौल में पले–बड़े और अल्पवय से ही सामाजिक व आध्यात्मिक अभियानों में सक्रिय आप जैन–अध्यात्म के प्रचार–प्रसार के क्षेत्र में **आज विश्व के सर्वोपरि संस्थान पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट व पंडित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर के महामंत्री हैं।**

राष्ट्रीय स्तर के जैन युवा संगठन **अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन के आप राष्ट्रीय महामंत्री हैं। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चेरिटेबल ट्रस्ट के महामंत्री** के अतिरिक्त देश के जैन विद्वानों के 85 वर्ष पुराने संगठन **'अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत परिषद ट्रस्ट के आप उपाध्यक्ष एवं आधुनिक जैन विद्वानों के संगठन पंडित टोडरमल स्नातक परिषद ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं।**

तीर्थधाम मंगलायतन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं श्री महावीर स्वामी कुन्दकुन्द कहान दि. जैन मुमुक्षु मंडल ट्रस्ट बोरीवली, मुंबई के भी आप ट्रस्टी हैं।

पंडित टोडरमल दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय, श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड एवं श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति भी आपके निर्देशन में कार्य करती हैं।

प्रस्तुत कृति – ''क्षमावाणी : धर्म या धर्मसंकट'' 'क्षमा' के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अनेक तर्कों और युक्तिओं के माध्यम से जीवन में क्षमा के महत्व को स्थापित करती है।

आपकी अन्य कृतियों में धर्म की व्याख्याओं की विज्ञान द्वारा पुष्टि किये जाने की दासता भरी वृत्ति से मुक्ति प्रदान करती कृति **'क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है', जीवन और मृत्यु के यथार्थ पर व्यवहारिक एवं युक्तियुक्त रूप से रोचक–शैली में प्रकाश डालने वाली रचना 'क्या मृत्यु अभिशाप है' एवं सामान्यजन के जीवन–क्रम की विवेचना करते हुए इस जीवन के लक्ष्य को परिभाषित करती हुई रचना 'अंतर्द्वन्द्व' आदि** भी पाठकों द्वारा सराही गई हैं और पठनीय हैं।

जैन–पथप्रदर्शक के सम्पादकीय के रूप में महत्त्वपूर्ण विषयों पर आपके लेख भी बड़े चाव से पढ़े जाते हैं।